॥ श्रीहरिः ॥

110

गोस्वामी तुलसीदासजीरचित

श्रीकृष्ण-गीतावली

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR [SINCE 1923]

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीरचित

श्रीकृष्णगीतावली

सरल भावार्थसहित

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

निवेदन

'श्रीकृष्णगीतावली' गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीका अति ललित व्रजभाषामें रचित बड़ा ही रसमय और अत्यन्त मधुर गीति-काव्य है। इसमें कुल ६१ पद हैं, जिनमें २० बाललीलाके, ३ रूप-सौन्दर्यके, ९ विरहके, २७ उद्धव-गोपिका-संवाद या भ्रमरगीतके और २ द्रौपदी-लज्जा-रक्षणके हैं। सभी पद परम सरस और मनोहर हैं। पदोंमें ऐसा स्वाभाविक सुन्दर और सजीव भावचित्रण है कि पढ़ते-पढ़ते लीला-प्रसंग मूर्तिमान् होकर सामने आ जाता है।

गोस्वामीजीके इस ग्रन्थसे यह भलीभाँति सिद्ध हो जाता है कि श्रीराम-रूपके अनन्योपासक होनेपर भी श्रीगोस्वामीजी भगवान् श्रीरामभद्र और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें सदा अभेदबुद्धि रखते थे और दोनों ही स्वरूपोंका तथा उनकी लीलाओंका वर्णन करनेमें अपनेको कृतकृत्य तथा धन्य मानते थे। 'विनयपत्रिका' आदिमें भी श्रीकृष्णरूपका महत्त्व कई जगह आया है, पर श्रीकृष्णगीतावलीमें तो वह प्रत्यक्ष प्रकट हो गया है।

श्रीकृष्णगीतावलीके पदोंका भावार्थ भी साथ दे दिया गया है, इससे पदोंका भाव समझनेमें कुछ सुविधा होगी। आशा है श्रीकृष्णप्रेमी पाठक-पाठिकाएँ गोस्वामीजीकी इस अनूठी रचनासे प्रेमपथके साधनमें प्रगति तथा परम आनन्द लाभ करेंगे।

श्रीनाम-नवमी सं० २०१४ — हनुमानप्रसाद पोद्दार

रतनगढ़ (राजस्थान)

॥ श्रीहरिः ॥

विषयानुक्रमणिका

पदोंकी वर्णानुक्रमणिका

॥ श्रीहरिः ॥

(प्रातःस्मरणीय गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी-रचित)

श्रीकृष्णगीतावली

बाल-लीला

राग बिलावल

[१]

(माता) लै उछंग गोबिंद मुख बार-बार निरखै।
पुलकित तनु आनँदघन छन छन मन हरषै॥ १॥
पूछत तोतरात बात मातहि जदुराई।
अतिसय सुख जाते तोहि मोहि कहु समुझाई॥ २॥
देखत तुव बदन कमल मन अनंद होई।
कहै कौन रसन मौन जानै कोइ कोई॥ ३॥
सुंदर मुख मोहि देखाउ इच्छा अति मोरे।
मम समान पुन्य पुंज बालक नहिं तोरे॥ ४॥
तुलसी प्रभु प्रेम बिबस[1] मनुज रूपधारी।
बालकेलि लीला रस ब्रज जन हितकारी॥ ५॥

यशोदा मैया बाल-गोविन्दको गोदमें लेकर बार-बार उनका मुख निरख रही है। आनन्दकी घनमूर्ति (स्वयं) श्रीकृष्ण प्रतिक्षण (अधिकाधिक) हर्षित हो रहे हैं तथा उनका शरीर पुलकित हो रहा है॥ १॥ (माताको यों आनन्दमग्न देख) यादवराय श्रीकृष्ण तोतली वाणीमें माँसे पूछते हैं— '(मैया !) तुझको जिस कारणसे अत्यन्त सुख हो रहा है, वह मुझको समझाकर कह'॥ २॥

(माता बोली—लल्ला!) तेरा मुखकमल देखते ही मनमें आनन्द होता है। उस आनन्दका वर्णन कौन करे ? जीभ मौन हो जाती है। उस (अलौकिक) आनन्दको कोई-कोई (वात्सल्य-प्रेमरसके भावुकजन) ही

---

१. पाठभेद— 'प्रेमस्य'।

जानते हैं॥ ३॥ (अच्छा लल्ला! अपना) सुन्दर मुखड़ा मुझे (बार-बार) दिखाता रह, मेरी (उसे देखनेकी) बड़ी इच्छा है। मेरे समान पुण्यपुञ्ज कोई नहीं है, (क्योंकि) तेरे समान कोई बालक (जगत्‌में) नहीं है। (अर्थात् मेरे समान पुण्यात्मा दूसरा कौन है, जिसको तेरे समान अनुपम बालक पुत्ररूपमें मिला हो)॥ ४॥ तुलसीदासजी कहते हैं—प्रेमवश हो मेरे प्रभुने मनुष्यरूप धारण किया है और व्रजवासियोंका हित करनेके लिये (सुख पहुँचानेके लिये) बालक्रीड़ारूप लीला-रसके आवेशमें मग्न हैं॥ ५॥

राग ललित

[२]

'छोटी मोटी मीसी रोटी चिकनी चुपरि कै तू
दै री, मैया!' 'लै कन्हैया!' 'सो कब?' 'अबहिं तात॥'
'सिगरियै हौंहीं खैहौं, बलदाऊ को न दैहौं॥'
'सो क्यों ?' 'भटू, तेरो कहा' कहि इत उत जात॥ १॥
बाल बोलि डहकि बिरावत, चरित लखि,
गोपि गन महरि मुदित पुलकित गात।
नूपुर की धुनि किंकिनि को कलरव सुनि,
कूदि कूदि किलकि किलकि ठाढ़े ठाढ़े खात॥ २॥
तनियाँ ललित कटि, बिचित्र टेपारो सीस,
मुनि मन हरत बचन कहै तोतरात।
तुलसी निरखि हरषत बरषत फूल,
भूरिभागी ब्रजबासी बिबुध सिद्ध सिहात॥ ३॥

(श्रीकृष्ण अपनी माता यशोदासे कहते हैं—) 'मैया री ! तू मुझे छोटी किंतु मोटी, चिकनी, मीस्सी रोटी घी लगाकर दे।' (मैया बोली—) 'कन्हैया ! ले।' (पुत्रने पूछा—) 'उसे कब देगी ?' (माता बोली—) 'बेटा ! अभी (देती हूँ)' (श्रीकृष्णने कहा—'तो मैया !) पूरी रोटी मैं ही खाऊँगा, बलदाऊ भैयाको (उसमेंसे हिस्सा) नहीं दूँगा।' (यशोदाने पूछा—) 'ऐसा क्यों ?' (श्रीकृष्ण बोले—) 'अरी भली औरत, (इसमें) तेरा क्या (बिगड़ता है) ? (मैं अकेला ही खाऊँगा)' और यों कहकर

वे इधर-उधर चले जाते हैं॥ १॥ (और-और) बालकोंको बुलाकर उन्हें रोटी दिखा-दिखाकर, किंतु उनके माँगनेपर न देकर चिढ़ाते हैं। (उनके इन) चरित्रोंको देखकर गोपियाँ और यशोदा मैया मोदमें भर जाती हैं, उनके शरीर रोमाञ्चित हो जाते हैं। श्रीकृष्ण अपने ही नूपुरोंकी ध्वनि और करधनीका मधुर शब्द सुनकर कूद-कूद तथा किलक-किलककर खड़े-खड़े ही रोटी खा रहे हैं॥ २॥ उनकी कमरमें सुन्दर कछनी है, सिरपर विचित्र मुकुटाकार चौगोसिया टोपी है; जब तुतलाकर बोलते हैं (तब तो) वे मुनियोंका (भी) मन हर लेते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि देवता तथा सिद्धगण यह (देख) देखकर हर्षित होते, फूल बरसाते और महान् भाग्यशाली व्रजवासियोंसे ईर्ष्या करते हैं। (मन-ही-मन कहते हैं कि हमारे भाग्य इन व्रजवासियों-जैसे नहीं हैं, तभी तो हम इस सुखसे वञ्चित हैं।)॥ ३॥

गोपी-उपालम्भ

राग आसावरी

[३]

तोहि स्याम की सपथ जसोदा ! आइ देखु गृह मेरें।
जैसी हाल करी यहि ढोटा छोटे निपट अनेरें॥ १॥
गोरस हानि सहौं, न कहौं कछु, यहि ब्रजबास बसेरें।
दिन प्रति भाजन कौन बेसाहै ? घर निधि काहू केरें॥ २॥
किएँ निहोरो हँसत, खिझे तें डाँटत नयन तरेरें।
अबहीं तें ये सिखे कहाँ धौं चरित ललित सुत तेरें॥ ३॥
बैठो सकुचि साधु भयो चाहत मातु बदन तन हेरें।
तुलसिदास प्रभु कहौं ते बातैं जे कहि भजे सबेरें॥ ४॥

(ग्वालिनी यशोदाजीको उलाहना देती हुई कहती हैं—) तुम्हें श्यामसुन्दरकी शपथ है, (तुम्हारे) इस निपट अन्यायी छोटे-से लड़ैतेने (मेरे घरकी) जैसी दुर्दशा की है, उसे मेरे घर आकर देखो तो सही॥ १॥ दूध-दही-माखनकी हानि तो सह लेती हूँ, कुछ (भी) नहीं कहती, क्योंकि इसी व्रजकी बस्तीमें रहना है। पर नित्य (नये) बर्तन कौन खरीदे; क्या किसीके घरमें धनका खजाना भरा है?॥ २॥ निहोरा (अनुनय-विनय)

करनेपर यह हँसने लगता है, खीझनेसे आँखें तरेरकर डाँटता है। जाने अभीसे तुम्हारे इस ललित लालने ये सब चरित्र कहाँसे सीख लिये हैं?॥ ३॥ इस समय माँके मुँहकी ओर निहारता हुआ ऐसा सकुचाकर (सिमटकर स्थिर होकर) बैठा है; मानो (सबकी दृष्टिमें) साधु सजना चाहता है। तुलसीदासजीके शब्दोंमें ग्वालिनी श्रीकृष्णसे कहती है कि 'प्रभुजी ! सबेरे जो कुछ कहकर आप भाग आये थे, क्या उन बातोंको मैं कह दूँ?'॥ ४॥

[४]

मो कहँ झूठेहुँ दोष लगावहिं।
मैया! इन्हहि बानि पर घर की, नाना जुगुति बनावहिं॥ १॥
इन्ह के लिएँ खेलिबो छाँड्यो, तऊ न उबरन पावहिं।
भाजन फोरि, बोरि कर गोरस, देन उरहनो आवहिं॥ २॥
कबहुँक बाल रोवाइ पानि गहि, मिस करि उठि-उठि धावहिं।
करहिं आपु, सिर धरहिं आन के, बचन बिरंचि हरावहिं॥ ३॥
मेरी टेव बूझि हलधर सों, संतत संग खेलावहिं।
जे अन्याउ करहिं काहू को, ते सिसु मोहि न भावहिं॥ ४॥
सुनि सुनि बचन चातुरी ग्वालिनि हँसि हँसि बदन दुरावहिं।
बाल गोपाल केलि कल कीरति तुलसिदास मुनि[१] गावहिं॥ ५॥

(श्रीकृष्ण कहने लगे—) मैया ! ये मुझपर झूठ-मूठ दोष लगाती हैं। इन्हें तो पराये घर भटकनेकी टेव पड़ गयी है, इसीसे ये (अपने यहाँ आनेके लिये) तरह-तरहकी युक्ति रचा करती हैं॥ १॥ इनके लिये मैंने खेलनातक छोड़ दिया, तब भी इनसे बच नहीं पाते। ये (स्वयं ही अपने) बर्तनोंको फोड़कर, दही-दूधमें हाथ डुबाकर उलाहना देने चली आती हैं॥ २॥ कभी तो बालकोंको रुलाकर,उनके हाथ पकड़कर बहाना बनाती हुई उठ-उठकर दौड़ी आती हैं। करती तो हैं सब कुछ आप और दोष मढ़ती हैं दूसरेके सिर! बातोंमें तो ये ब्रह्माजीको भी मात कर देती हैं (ऐसी चतुर हैं)॥ ३॥ मेरी कैसी आदत है, यह तो (मैया ! तू) हलधर भैयासे पूछ ले, निरन्तर वे मुझे अपने साथ खेलाते हैं। मुझे तो वे बालक

---

१. पाठभेद—'सुर'।

अच्छे ही नहीं लगते, जो दूसरेके प्रति अन्याय करते हैं। फिर भला, मैं स्वयं कैसे किसीके साथ अन्याय करने जाता ?॥ ४॥ श्रीकृष्णकी वचन-चातुरी सुन-सुनकर ग्वालिनें हँस-हँसकर अपना मुँह छिपा लेती हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि बाल-गोपाल (यशोदानन्दन) के सुन्दर लीलायशका मुनिगण गान करते हैं॥ ५॥

[५]

कबहुँ न जात पराए धामहिं।
खेलत ही देखौं निज आँगन सदा सहित बलरामहिं॥ १॥
मेरे कहाँ थाकु गोरस को, नव निधि मन्दिर या महिं।
ठाढ़ी[1] ग्वालि ओरहना के मिस आइ बकहिं बेकामहिं॥ २॥
हौं बलि जाउँ जाहु कितहूँ जनि, मातु सिखावति स्यामहिं।
बिनु कारन हठि दोष लगावति तात गएँ गृह ता महिं॥ ३॥
हरि मुख निरखि, परुष बानी सुनि, अधिक-अधिक अभिरामहिं।
तुलसिदास प्रभु देख्योइ चाहति श्रीउर ललित ललामहिं॥ ४॥

(यशोदा मैया ग्वालिनोंसे कहती हैं—मेरा कन्हैया तो) कभी दूसरेके घर जाता ही नहीं। मैं तो इसको सदा बलरामके साथ अपने आँगनमें ही खेलते देखती हूँ॥ १॥ मेरे यहाँ दूध-दही-माखनकी थाह (सीमा) थोड़े ही है (जो यह दूसरे घर जाय); मेरे इस घरमें नवों निधियाँ भरी हैं। ये ग्वालिनें बिना ही प्रयोजन उलाहना देनेके बहाने आकर यहाँ खड़ी बक रही हैं॥ २॥ (फिर) माता अपने श्यामसुन्दरको सीख देती है—(मेरे लाल !) मैं बलिहारी जाती हूँ, तुम कहीं मत जाया करो। बेटा ! (देखो,)इनके घर जानेसे ये रुष्ट होती हैं और बिना ही कारण जबरदस्ती तुमपर दोष लगा रही हैं॥ ३॥ ग्वालिनें श्रीहरिके मुखको निरखकर और (यशोदाजीके) कठोर वचन सुनकर अधिक-अधिक सुख पा रही हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि वे तो श्रीलक्ष्मीजीके हृदयके इस ललित रत्न प्रभु श्रीकृष्णको देखते ही रहना चाहती हैं। (इसीलिये तो वे उलाहनेके बहाने आया करती हैं।)॥ ४॥

---

१. पाठभेद—'ठालीं'।

[६]

अब सब साँची कान्ह तिहारी।
जो हम तजे, पाइ गौं मोहन गृह आए दै गारी॥ १॥
सुसुकि सभीत सकुचि रूखे मुख बातें सकल सँवारी।
साधु जानि हँसि हृदयँ लगाए, परम प्रीति महतारी॥ २॥
कोटि जतन करि सपथ कहैं हम, मानै कौन हमारी।
तुमहि बिलोकि, आन को ऐसी क्यों कहिहैं बर नारी॥ ३॥
जैसे हौ तैसे सुखदायक ब्रजनायक बलिहारी।
तुलसिदास प्रभु मुख छबि निरखत मन सब जुगुति बिसारी॥ ४॥

(ग्वालिनी व्यङ्गभरी वाणीमें श्रीकृष्णसे कहती है—) कन्हैया! अब तो तुम्हारी सभी बातें सत्य हैं। मोहन ! हमने जब तुम्हें छोड़ दिया, तब मौका पाकर तुम गाली देते हुए घर भाग आये॥ १॥ और अब सिसकियाँ भरकर, भयभीत एवं लज्जित हो तथा रूखा मुँह बनाकर (माताके सामने) सारी बातें सँवार-बना लीं। माता यशोदाने भी तुम्हें साधु समझकर परम स्नेहसे हँसकर हृदयसे लगा लिया॥ २॥ अब तो हम करोड़ों युक्तियोंका आश्रय लेकर शपथपूर्वक भी कहें तो भी हमारी कौन मानेगा? तुम्हारी इस (बनावटी साधु) सूरतको देखकर क्यों कोई भली स्त्री (तुम्हारी बात न मानकर) दूसरेकी तरह कहेगी॥ ३॥ ब्रजनायक ! मैं तुमपर बलिहारी जाती हूँ। तुम जैसे हो, वैसे ही सुख देनेवाले हो। तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रभुकी मुख-छविको निरखकर ग्वालिनीको मनकी सारी युक्तियाँ भूल गयीं॥ ४॥

राग केदारा

[७]

महरि तिहारे पायँ परौं, अपनो ब्रज लीजै।
सहि देख्यो, तुम सों कह्यो, अब नाकहिं आई,
कौन दिनहिं दिन छीजै॥ १॥
ग्वालिनि तौ गोरस सुखी, ता बिनु क्यों जीजै।
सुत समेत पाउँ धारि, आपुहि भवन मेरे,
देखिये जो न पतीजै॥ २॥

अति अनीति नीकी नहीं, अजहूँ सिख दीजै।
तुलसिदास प्रभु सों कहै उर लाइ जसोमति,
ऐसी बलि कबहूँ नहिं कीजै॥ ३॥

(ग्वालिनी फिर आकर श्रीयशोदा मैयाको उलाहना देने लगी—) व्रजरानी ! तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, अपने व्रजको सँभालो। मैंने (बहुत) सहकर देख लिया, तुमसे भी कहा, पर अब तो नाकों आ गयी ! रोज-रोज कौन (इस प्रकार) क्षति सहेगा !॥ १॥ ग्वालिनी तो दूध-दही-माखनसे ही सुखी रहती है, वही जब न रहे (सारा-का-सारा ही तुम्हारा कन्हैया बरबाद कर दे) तब क्योंकर जीया जाय। यदि मेरी बातपर विश्वास न हो तो अपने इस लाड़िलेको साथ लेकर आप स्वयं मेरे घर पधारें और (सब अपनी आँखोंसे) देख लें॥ २॥ अत्यन्त अनीति अच्छी नहीं होती। अब भी इसे समझा दें। तुलसीदासजीके शब्दोंमें यशोदा मैया प्रभुको हृदयसे लगाकर कहती हैं—बेटा ! तेरी बलैया लेती हूँ, (आगे) कभी ऐसा न करना॥ ३॥

[८]

अबहिं उरहनो दै गई, बहुरौ फिरि आई।
सुनु मैया ! तेरी सौं करौं, याको टेव लरन की,
सकुच बेंचि सी खाई॥ १॥
या ब्रज में लरिका घने, हौं ही अन्याई।
मुँह लाएँ मूँडहिं चढ़ी, अंतहुँ अहिरिनि, तू सूधी करि पाई॥ २॥
सुनि सुत की अति चातुरी जसुमति मुसुकाई।
तुलसिदास ग्वालिनि ठगी, आयो न उतरु,
कछु, कान्ह ठगौरी लाई॥ ३॥

(ग्वालिनीकी बातपर मैयाको विश्वास-सा करते देखकर श्रीकृष्ण रोते-से कहने लगे—मैया !) यह अभी-अभी तो उलाहना देकर गयी थी, फिर लौटकर आ गयी। मैया ! सुन, मैं तेरी शपथ करके कहता हूँ; इसका तो लड़नेका स्वभाव हो गया है। यह शील-संकोचको तो मानो बेचकर खा गयी है॥ १॥ इस व्रजमें लड़के तो बहुत हैं, क्या मैं ही एक अन्यायी हूँ (जो बार-बार मुझपर ही दोष मँढ़ती चली आती है) ? तेरे

मुँह लगानेसे तो यह सिरपर ही चढ़ गयी है। आखिर अहीरनी ही तो है, तुम इसे बहुत सीधी मिल गयी॥ २॥ अपने लालकी बड़ी चतुराई (भरी बात) सुनकर यशोदाजी मुसकराने लगीं। तुलसीदासजी कहते हैं— ग्वालिनी तो (श्रीकृष्णकी बोली सुनकर) ठगी-सी रह गयी। उससे (कोई) उत्तर देते न बना। कन्हैयाने उसपर (मानो) कुछ टोना कर दिया हो॥ ३॥

राग गौरी

[९]

अब ब्रज बास महरि किमि कीबो।
दूध दह्यो माखन ढारत हैं,
हुतो पोसात दान दिन दीबो॥ १॥
अब तौ कठिन कान्ह के करतब
तुम हौ हँसति कहा कहि लीबो।
लीजै गाउँ, नाउँ लै रावरो,
है जग ठाउँ कहूँ ह्वै जीबो॥ २॥
ग्वालि बचन सुनि कहति जसोमति,
भलो न भूमि पर बादर छीबो
दैअहि लागि कहौं तुलसी प्रभु,
अजहुँ न तजत पयोधर पीबो॥ ३॥

(दूसरी ग्वालिनी आकर कहती है—) नन्दरानी! अब व्रजमें बसना कैसे होगा? अब तो यह (सारा-का-सारा ही) दूध-दही-माखन ढरकाने लगा! प्रतिदिन दान देना तो बन जाता था (क्योंकि वह नियत परिमाणमें ही देना पड़ता था।)॥ १॥ किंतु अब तो (इस) कान्हके करतब (बड़े) कठिन हो गये हैं। (लो !) तुम तो हँस रही हो ! (फिर) तुम्हें कहकर ही क्या लाभ उठाऊँगी ? अपना गाँव सँभालो ! तुम्हारा नाम लेकर जगत्‌में जगह मिल ही जायगी। कहीं भी रहते हुए जीवन-निर्वाह कर लिया जायगा॥ २॥ ग्वालिनीकी बात सुनकर (और लालकी सीधी रोनी-सी सूरत देखकर) यशोदाजी कहती हैं—अरी ! यों जमीनपर बादल छूना ठीक नहीं (दूधमुँहे बच्चेपर ऐसा असम्भव दोष लगाना

अच्छा नहीं)। तुलसीदासजीके शब्दोंमें माता यशोदा बोली कि मैं भगवान्‌के लिये तुमसे कहती हूँ—अभी तो यह स्तन पीना भी नहीं छोड़ सका है (फिर तुम्हारे घर जाकर दही-माखन कैसे ढरका देगा ?)॥ ३॥

[१०]

जानी है ग्वालि परी फिरि फीकें।
मातु काज लागी लखि डाटत,
है बायनो दियो घर नीकें॥ १॥
अब कहि देउँ, कहति किन, यों कहि,
माँगत दही धर्‍यो जो छीकें॥ २॥
तुलसी प्रभु मुख निरखि रही चकि,
रह्यो न सयानप तन मन ती कें॥ ३॥

श्रीकृष्णने जब देखा कि ग्वालिनी फीकी पड़ गयी है—झेंप गयी है, तब माताको काममें लगी देखकर (उपयुक्त अवसर जानकर) ग्वालिनीको डाँटते हुए बोले—तूने भले घर बायना—न्योता दिया (सबलसे झगड़ा मोल लिया) है (आयी थी मैयाको उलाहना देकर मुझे डँटवाने—अब तू ही डाँट सह)॥ १॥ कहती थी, अभी कहे देती हूँ, फिर कहती क्यों नहीं (चुप क्यों हो गयी) ? इतना कहकर (मातासे) छीकेपर धरा दही माँगने लगे॥ २॥ तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रभुका मुख निरखकर ग्वालिनी चकित रह गयी (प्रेम-विवश हो गयी)। उसके तन-मनमें तनिक भी सयानापन (चेतना) नहीं रह गया॥ ३॥

[११]

जौलौं हौं कान्ह रहौं गुन गोए।
तौलौं तुमहि पत्यात लोग सब,
सुसुकि सभीत साँचु सो रोए॥ १॥
हौ भले नँग-फँग परे गढ़ीबे,
अब ए गढ़त महरि मुख जोएँ।
चुपकि न रहत, कह्यौ कछु चाहत,
ह्वैहै कीच कोठिला धोएँ॥ २॥

गरजति कहा तरजिनिन्ह तरजति,
बरजत सैन नैन के कोए।
तुलसी मुदित मातु सुत गति लखि,
बिथकी है ग्वालि मैन मन मोए॥ ३॥

(ग्वालिनीने व्यङ्गसे कहा—) कान्हा ! जबतक मैं तुम्हारे गुणोंको छिपाये हुए हूँ, तभीतक सब लोग यह विश्वास कर रहे हैं कि सचमुच तुम भयभीत हो सिसकियाँ भरकर रो रहे हो॥ १॥ (एक तो वैसे ही) तुम परले सिरेके नंगेपन तथा जाल रचनेमें कुशल हो (फिर) महरि (यशोदा) का मुँह देखकर अब और भी फरेब रच रहे हो। तुम चुप नहीं रहते, कुछ-न-कुछ कहना ही चाहते हो; पर (याद रखो) कुठिला (अनाज रखनेकी मिट्टीकी कोठी) धोनेसे तो कीचड़ ही होगा (तुम्हारी करतूत और भी सामने आ जायगी)॥ २॥ (ग्वालिनीकी बात सुनकर श्यामसुन्दर कहने लगे—) 'क्या गरज रही हो और तर्जनी अँगुली दिखाकर डाँट रही हो और (फिर) नेत्रके कोयेसे सैन (संकेत) करके बरज भी रही हो ?' तुलसीदासजी कहते हैं कि माता यशोदा पुत्रकी यह चतुराई देखकर आनन्दसे खिल उठती है और ग्वालिनी मन-ही-मन प्रेमसे मुग्ध होकर थकित हो जाती है॥ ३॥

[१२]

भूलि न जात हौं काहू के काऊ।
साखि सखा सब सुबल, सुदामा,
देखि धौं बूझि, बोलि बलदाऊ॥ १॥
यह तो मोहि खिझाइ कोटि बिधि,
उलटि बिबादन आइ अगाऊ।
याहि कहा मैया मुँह लावति,
गनति कि ए लंगरि झगराऊ॥ २॥
कहत परसपर बचन, जसोमति
लखि नहिं सकति कपट सति भाऊ।
तुलसिदास ग्वालिनि अति नागरि,
नट नागर मनि नंद ललाऊ॥ ३॥

(श्रीश्यामसुन्दर मातासे बोले—)मैया! मैं भूलकर भी कभी किसीके (घर) नहीं जाता। सुबल, सुदामा (आदि) सभी मेरे सखा इसके साक्षी हैं। (और तो क्या, तू) बलदाऊ (भैया) को बुलाकर उसीसे पूछ देख॥ १॥ यह (ग्वालिनी) तो करोड़ों भाँतिसे मुझे तंग करके (तुमसे मैं कुछ कहूँ, इससे पहले ही अपना दोष छिपानेके लिये) आगे-आगे झगड़ा करने आ पहुँची है। मैया! (तू) इसे क्या मुँह लगाती है। यह (बड़ी) नटखट और झगड़ालू है, क्या यह किसीको कुछ गिनती है॥ २॥ (इस प्रकार) ग्वालिन और गोपाल परस्पर उत्तर-प्रत्युत्तर देते हैं; किंतु यशोदाजी समझ नहीं पातीं कि किसमें कितना कपट है और किसका सच्चा भाव है। तुलसीदासजी कहते हैं कि ग्वालिनी भी (बोलने तथा भाव-भङ्गिमा दिखानेमें) अत्यन्त चतुर है और नन्दलाल श्यामसुन्दर तो नट-नागरोंके मुकुटमणि ही ठहरे। फिर इनके कपट-सत्यका किसीको कैसे पता लगे?॥ ३॥

[१३]

छाँड़ो मेरे ललन! ललित लरिकाई।
ऐहैं सुत! देखुवार कालि तेरे,
बबै ब्याह की बात चलाई॥ १॥
डरिहैं सासु ससुर चोरी सुनि,
हँसिहैं नइ दुलहिया सुहाई।
उबटौं न्हाहु, गुहौं चुटिया बलि,
देखि भलो बर करिहिं बड़ाई॥ २॥
मातु कह्यो करि कहत बोलि दै,
'भइ बड़ि बार, कालि तौ न आई'।
'जब सोइबो तात' यों 'हाँ' कहि,
नयन मीचि रहे पौढ़ि कन्हाई॥ ३॥
उठि कह्यो, भोर भयो, झँगुली दै,
मुदित महरि लखि आतुरताई।
बिहँसी ग्वालि जानि तुलसी प्रभु,
सकुचि लगे जननी उर धाई॥ ४॥

(यशोदा मैया हँसकर बड़े प्रेमसे समझाती हुई श्यामसुन्दरसे कहती हैं—) मेरे लाल ! तू इस ललित लड़कपनको छोड़ दे (तू जो किसीके घर जाकर माखन खा आता है, यह तेरा कोई अपराध थोड़े ही है, लड़कपन है, बच्चे ऐसा किया ही करते हैं। और यह है भी बहुत ललित—अत्यन्त सुन्दर। इससे सभीको सुख मिलता है, पर लोग कहेंगे कि 'यह तो चोर है, इसके साथ ब्याहकी बात कैसी ?' इससे तेरी सगाईमें बाधा पड़ जायगी)। 'बेटा ! कल ही तुम्हें देखनेवाले आयेंगे; क्योंकि तेरे बाबा (नन्दजी) ने तेरे ब्याहकी बात चला रखी है॥ १॥ चोरीकी बात सुनकर तेरे (भावी) सास-ससुर डर जायँगे (और तेरी सगाई नहीं करेंगे); तेरी वह परम सुहावनी नयी दुलहिनी भी हँसी करेगी (अतएव तू इस टेवको छोड़ दे)। आ, तेरे उबटन लगा दूँ; फिर तू नहा ले, मैं तेरी चोटी गूँथ दूँ। मैं तेरी बलिहारी जाती हूँ। (इस प्रकार तू सुन्दर बन जायगा) तब तुझे सुन्दर वर देखकर देखनेवाले बड़ाई करेंगे'॥ २॥ श्यामसुन्दरने माताका कहा मान लिया, बोले—(मैया ! अब मैं चोरी नहीं करूँगा; फिर जब नहा-धोकर चोटी गुँथवाकर तैयार हो गये, तब) पुकारकर बोले—(मैया !) बहुत देर हो गयी, (तूने कहा था न कि वे कल आयेंगे, सो वह) कल तो अभी आया नहीं। यशोदा बोलीं—बेटा ! हाँ (सच तो है अभी कल नहीं आया)। तू जब सो जायगा (रात बीत जायगी, तब कल आयेगा)। इतना सुनते ही श्रीकृष्ण 'अच्छा' कहकर आँखें मूँदकर सो गये॥ ३॥ (फिर तुरंत ही) उठकर बोले—(मैया !) सबेरा हो गया, झँगुली दे (पहन लूँ, वे मुझे देखनेवाले आते ही होंगे)। महरि यशोदाजी पुत्रके विवाहके लिये इतनी आतुरता देखकर प्रमुदित हो गयीं। ग्वालिनी बड़े जोरसे हँस पड़ी। तुलसीदासजी कहते हैं कि यह देखकर प्रभु श्रीश्यामसुन्दर लजाकर दौड़कर अपनी माताके हृदयसे चपट गये॥ ४॥

उलूखल-बन्धन

राग केदारा

[१४]

हरि को ललित बदन निहारु।
निपटहीं डाँटति निठुर ज्यों लकुट कर तें डारु॥ १॥

मंजु अंजन सहित जल कन चवत लोचन चारु।
स्याम सारस मग मनहुँ ससि स्रवत सुधा सिंगारु॥ २॥
सुभग उर दधि बुंद सुंदर लखि अपनपौ वारु।
मनहुँ मरकत मृदु सिखर पर लसत बिसद तुषारु॥ ३॥
कान्हहू पर सतर भौंहैं महरि ! मनहिं बिचारु।
दास तुलसी रहति क्यों रिस निरखि नंदकुमारु॥ ४॥

(श्यामसुन्दरने दहीकी मटकी फोड़ दी, माखन बंदरोंको लुटा दिया। यशोदा मैया उन्हें पकड़ने चलीं, वे दौड़े, पर आखिर पकड़े गये। मैयाने छड़ी हाथमें लेकर उन्हें डाँटना आरम्भ किया, वे डर गये, आँखोंसे आँसू बह चले। इसी समय यशोदा मैयाकी समवयस्का कुछ गोपियोंने आकर यशोदासे कहा—)

(अरी यशोदे ! सबके मनको बरबस हर लेनेवाले) हरिके सुन्दर मुखकी ओर तो देख। निष्ठुरकी भाँति सर्वथा डाँटनेपर ही उतर पड़ी है। (तुझे दया नहीं आती ?) छड़ीको फेंक दे हाथसे॥ १॥ (देख!) सुन्दर नेत्रोंसे कमनीय काजलसे युक्त जलके कण (आँसूकी नन्हीं-नन्हीं बूँदें) किस प्रकार गिर रहे हैं, मानो चन्द्रमासे श्याम कमलके मार्गसे अमृतरूप शृङ्गार-रस स्रवित हो रहा है॥ २॥ (अहा !) शोभामय हृदयपर पड़ी हुई दहीकी बूँद तो ऐसी सुन्दर लगती है कि उसे देखकर अरी सखी ! अपनपा (आत्माकी सुध-बुध) ही खो देनी चाहिये, (वह बूँद ऐसी शोभा पा रही है) मानो मरकत मणिके पर्वत-शिखरपर उज्ज्वल हिमखण्ड (बर्फ) सुशोभित हो॥ ३॥ (ऐसे) कन्हैयापर भी टेढ़ी भौंहें— अरी महरि (यशोदे) ! मनमें विचार तो कर! तुलसीदासजी कहते हैं कि इस नन्दकुमारको निरखकर क्रोध क्योंकर रह सकता है?॥ ४॥

[१५]

लेत भरि भरि नीर कान्ह कमल नैन।
फरक अधर डर, निरखि लकुट कर, कहि न सकत कछु बैन॥ १॥
दुसह दाँवरी छोरि, थोरी खोरि, कहा कीन्हो,
चीन्हो री सुभाउ तेरो आजु लगे माई मैं न।
तुलसिदास नँद ललन ललित लखि रिस क्यों रहति उर ऐन॥ २॥

(दूसरी सखी कहती है—) (देख !) कन्हैया अपने नेत्र-कमलोंमें बार-बार जल भरे लेता है (उसकी आँखोंके आँसू सूखते ही नहीं)। तेरे हाथमें छड़ी देखकर डरके मारे उसके होंठ फड़क रहे हैं, वह कुछ भी बोल नहीं पाता॥ १॥ (अरी !) इस कठोर रस्सीको तो खोल दे। थोड़े-से अपराधपर तूने क्या कर डाला। अरी मैया! मैंने आजतक तेरे इस (क्रोधी) स्वभावको नहीं पहचाना था। तुलसीदासजी कहते हैं कि इस मन-मोहन नन्दलालको देखकर भी तेरे हृदय-भवनमें क्रोध क्योंकर टिक पाता है?॥ २॥

[१६]

हा हा री महरि ! बारो, कहा रिस बस भई,
कोखि के जाए सों रोषु केतो बड़ो कियो है।
ढीली करि दाँवरी, बावरी ! साँवरेहि देखि,
सकुचि सहमि सिसु भारी भय भियो है॥ १॥
दूध दधि माखन भो, लाखन गोधन धन
जब ते जनम हलधर हरि लियो है।
खायो, कै खवायो, कै बिगार्‌यो, ढार्‌यो लरिका री,
ऐसे सुत पर कोह, कैसो तेरो हियो है?॥ २॥
मुनि कहैं सुकृती न नंद जसुमति सम
न भयो, न भावी, नहीं विद्यमान बियो है।
कौन जानै कौनें तप, कौनें जोग जाग जप
कान्ह सो सुवन तोको महादेव दियो है॥ ३॥
इन्हही के आए ते बधाए ब्रज नित नए
नादत बाढ़त सब सब सुख जियो है।
नंदलाल बाल जस संत सुर सरबस
गाइ सो अमिय रस तुलसिहुँ पियो है॥ ४॥

(तीसरी सखी बोली—) हाय, हाय ! अरी महरि ! यह बालक (नादान) है। क्या क्रोधके वश हो रही है ? अपनी कोखके जायेपर कितना भारी गुस्सा किया है ? रस्सी ढीली कर दे; अरी पगली ! इस साँवरे-सलोनेको तो देख। यह सकुच और सहम गया है, बच्चा बड़े भारी

भयसे भीत हो रहा है॥ १ ॥ जबसे इन हलधर (बलराम) और हरि (श्याम) ने जन्म लिया है, तबसे (तेरे घर) दूध, दही, मक्खन (ही नहीं), लाखों गायें तथा अन्य प्रकारका धन हो गया है। अरी, बच्चा ही तो है (क्या हुआ जो) उसने थोड़ा-सा खा लिया या (बंदरोंको) खिला दिया, खराब कर दिया अथवा गिरा दिया। ऐसे (सुन्दर) पुत्रपर क्रोध ? तेरा कैसा (वज्रका) हृदय है !॥ २ ॥ मुनि (गर्गजी) तो कह गये हैं कि नन्द और यशोदाके समान पुण्यवान् (जगत्‌में) न हुआ, न होगा और न वर्तमानमें ही दूसरा कोई है। जाने किस तप, किस योग, यज्ञ अथवा जपके फलस्वरूप (औढरदानी) श्रीमहादेवजीने तुझे कन्हैया-जैसा पुत्र दिया है॥ ३ ॥ इन्हीं (भाग्यशाली नीलमणि) के पधारनेसे (आज)व्रजमें नित्य नयी बधाइयाँ बजती हैं, सबकी उन्नति हो रही है, सभी लोग सुखपूर्वक जीवन-यापन कर रहे हैं। इस बालक नन्दलालका यश ही तो संतों (भक्तों) और देवताओंका सर्वस्व है। तुलसीदासजी कहते हैं कि मैंने भी इसका गान करके अमृतरसका पान किया है॥ ४ ॥

[१७]

ललित लालन निहारि, महरि मन बिचारि,
डारि दै घरबसी लकुटी बेगि कर तें।
कछु न कहि सकत, सुसुकत सकुचत,
डरहू को डर कान्ह डरै तेरे डर तें॥ १ ॥
कह्यो मेरो मानि, हित जानि, तू सयानी बड़ी,
बड़े भाग पायो पूत बिधि हरि हर तें।
ताहि बाँधिबे को धाई, ग्वालिन गोरस बहाई,
लै लै आई बावरी दाँवरी घर-घर तें॥ २ ॥
कुलगुरु तिय के बचन कमनीय सुनि
सुधि भए बचन जे सुने मुनिबर तें।
छोरि, लिए लाइ उर, बरषैं सुमन सुर
मंगल है तिहूँ पुर हरि हलधर तें॥ ३ ॥
आनँद बधावनो मुदित गोप-गोपीगन,
आजु परी कुसल कठिन करवर तें।

तुलसी जे तोरे तरु, किए देव दियो बरु,
कै न लह्यो कौन फरु देव दामोदर तें॥ ४॥

(नन्दबाबाके पुरोहित शाण्डिल्य मुनिकी पत्नीने अन्तमें समझाते हुए कहा—) 'महरि ! इस ललित (सुन्दर) लालको देखकर मनमें विचार कर और, अरी भली औरत, तुरंत अपने हाथसे इस छड़ीको फेंक दे। बच्चा कुछ कह तो सकता नहीं, सिसकियाँ भर रहा है और सकुचा रहा है। भयको भी भीत करनेवाला यह कन्हैया आज तेरे डरसे डर रहा है॥ १॥ अब बस, मेरा कहना मान ले। इसीमें अपनी भलाई समझ। अरी! तू तो बड़ी सयानी है। बड़े सौभाग्यसे ब्रह्मा-विष्णु-महेश (की कृपा) से यह पुत्र मिला है ! अरी दूध-दहीके लिये हाय-हाय करनेवाली ग्वालिनी! उसीको बाँधनेके लिये तू दौड़ी, और पगली! घर-घरसे रस्सियाँ ले-लेकर आयी!॥ २॥ इस प्रकार पुरोहितानीजीके सुन्दर वचन सुनकर यशोदाजीको वे वचन याद आ गये, जो उन्होंने मुनिश्रेष्ठ गर्गजीसे सुने थे। (बस, तुरंत माताने) बन्धन खोलकर अपने लालको हृदयसे लगा लिया, देवता पुष्पोंकी वर्षा करने लगे। तीनों लोकोंका मङ्गल श्रीकृष्ण-बलरामसे ही तो है॥ ३॥ आनन्दकी बधाइयाँ बज रही हैं। गोप और गोपिकाएँ मुदित हो रही हैं, आज (कन्हैयाकी) बड़े भारी संकटसे रक्षा हुई है ! तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीकृष्णने जिन (दो जुड़वे) वृक्षोंको उखाड़ा, उन्हें देवता बनाकर वरदान दिया। इन देव (-देव) भगवान् दामोदरसे भला, किसने कौन फल नहीं पाया?॥ ४॥

इन्द्रकोप—गोवर्धन-धारण

राग मलार

[१८]

ब्रज पर घन घमंड करि आए।
अति अपमान बिचारि आपनो कोपि सुरेस पठाए॥ १॥
दमकति दुसह दसहुँ दिसि दामिनि, भयो तम गगन गँभीर।
गरजत घोर बारिधर धावत प्रेरित प्रबल समीर॥ २॥
बार-बार पबिपात, उपल घन बरषत बूँद बिसाल।
सीत सभीत पुकारत आरत गो सुत गोपी ग्वाल॥ ३॥

राखहु राम कान्ह यहि अवसर, दुसह दसा भइ आइ।
नंद बिरोध कियो सुरपति सों, सो तुम्हरोइ बल पाइ॥ ४॥
सुनि हँसि उठ्यो नंद को नाहरु, लियो कर कुधर उठाइ।
तुलसिदास मघवा अपनी सो करि गयो गर्व गँवाइ॥ ५॥

व्रजपर गर्वके साथ (नष्ट करनेकी धमकीके रूपमें घोर गर्जना करते हुए) बादल छा गये। देवराज इन्द्रने (यज्ञ बन्द कर दिये जानेपर) अपना अत्यन्त अपमान समझकर इनको क्रोध करके भेजा था॥ १॥ दसों दिशाओंमें दुःसह बिजली चमकने लगी। आकाशमें घोर अन्धकार छा गया। बादल भयंकर गर्जना करने लगे और प्रबल पवनसे प्रेरित होकर (इधर-उधर) दौड़ने लगे॥ २॥ बार-बार बिजली गिरने लगी। बादल ओले तथा बड़ी-बड़ी (भयावनी) बूँदें बरसाने लगे। गौएँ, बछड़े या गोप-बालक, गोपियाँ तथा ग्वाले सर्दीसे भयभीत होकर आर्त पुकार करने लगे— ॥ ३॥ 'ओ बलराम, अरे श्रीकृष्ण ! रक्षा करो। इस समय हमपर असह्य विपत्ति आ पड़ी है। नन्दबाबाने जो देवराज इन्द्रका विरोध किया था, वह तुम्हारे ही बलपर किया था'॥ ४॥ इस (आर्त पुकार) को सुनकर नन्दका शेर हँसा, उठकर खड़ा हो गया और (उसने एक ही) हाथसे पहाड़को उठा लिया। तुलसीदासजी कहते हैं कि इन्द्र अपनी-सी करके (अपने बल-बूतेका असफल परिचय देकर) सारा गर्व खोकर लौट गया॥ ५॥

गोचारण अथवा छाक-लीला

राग गौरी

[१९]

टेरीं (कान्ह) गोबर्धन चढ़ि गैया।
मथि मथि पियो बारि चारिक मैं,
भूख न जाति अघाति न घैया॥ १॥
सैल सिखर चढ़ि चितै चकित चित,
अति हित बचन कह्यो बल भैया।
बाँधि लकुट पट फेरि बोलाईं,
सुनि कल बेनु धेनु धुकि धैया॥ २॥

बलदाऊ! देखियत दूरि तें,
आवति छाक पठाई मेरी मैया।
किलकि सखा सब नचत मोर ज्यों,
कूदत कपि कुरंग की नैया॥ ३॥
खेलत खात परसपर डहकत,
छीनत कहत करत रोग दैया।
तुलसी बालकेलि सुख निरखत,
बरषत सुमन सहित सुर सैया॥ ४॥

(एक बार श्यामसुन्दर दाऊ भैया और अपने सखाओंके साथ गौ चराने वनमें गये हुए थे। घरसे छाक आनेमें देर हो गयी, भूख बहुत लगी थी। बालस्वभावसे सोचा कि जैसे दही मथनेसे मक्खन निकलता है, वैसे ही जल बिलोनेसे भी निकल जायगा। वे बार-बार पानीको मथ-मथकर उसको झागसहित पीने लगे, पर उससे न तो भूख मिटी न पेट भरा; तब यह मनमें आया कि गायोंको बुलाकर उनके थनोंमें मुँह लगाकर दूध पीयें। इसी उद्देश्यसे वे गायोंको पुकारने लगे—)

कन्हैयाने गोवर्धनपर चढ़कर गायोंको पुकारा और बोले कि पानीको मथ-मथकर तीन-चार बार पी लिया, पर भूख नहीं मिटी। घैया (गायोंके थनमें मुँह लगाकर दूध पीने) की भाँति अघाया भी नहीं (पेट भी नहीं भरा)॥ १॥ (जब गायें नहीं आयीं,) तब कन्हैया पर्वतकी चोटीपर चढ़ गये और चकित-चित्त होकर (इधर-उधर) देखने लगे (गौएँ क्यों नहीं आयीं)। इतनेमें बलदाऊ भैयाने बड़े हितकी बात कही (कि वंशी बजाओ तो गायें आ जायँगी। यह सुनकर) कन्हैयाने छड़ीके सिरेमें पीताम्बर बाँधकर, उसे घुमाते हुए (वंशी-ध्वनि करके) गायोंको (फिर) बुलाया। वंशीकी मनोहर ध्वनिको सुनकर गायें बड़े वेगसे दौड़ आयीं॥ २॥ (इतनेमें ही दूरसे देखकर बोले—देख-देख) बलदाऊ भैया ! मेरी मैयाकी भेजी हुई छाक दूरसे आती दिखायी देती है। (यह सुनते ही) सब सखा किलक-किलककर मोरकी तरह नाचने लगे, बंदर और हरिनकी भाँति कूदने लगे॥ ३॥ (छाक आ पहुँची, तब) खेलते हुए उसे खाने लगे, एक-दूसरेको ललचाने लगे, (परस्पर) छीना-झपटी करने

लगे, कहने-सुनने लगे और बेईमानी करने लगे। तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीबालकृष्णकी बालकेलिका आनन्द देखकर देवता अपने स्वामी (इन्द्र) के साथ पुष्पोंकी वर्षा करने लगे॥ ४॥

यमुनातटपर वंशीवादन

राग नट

[२०]

गावत गोपाल लाल नीकें राग नट हैं।
चलि री आलि देखन, लोयन लाहु पेखन,
ठाढ़े सुरतरु तर तटिनी के तट हैं॥ १॥
मोरचंदा चारु सिर, मंजु गुंजा पुंज धरें,
बनि बनधातु तन ओढ़ें पीत पट हैं।
मुरली तान तरँग, मोहे कुरँग बिहँग,
जोहैं मूरति त्रिभंग निपट निकट हैं॥ २॥
अंबर अमर हरषत बरषत फूल,
स्नेह सिथिल गोप गाइन के ठट हैं।
तुलसी प्रभु निहारि जहाँ तहाँ ब्रज नारि,
ठगी ठाढ़ी मग लिएँ रीते भरे घट हैं॥ ३॥

मनोहर गोपाललाल सुन्दर रीतिसे नट-राग गा रहे हैं, सखी री ! चल उन्हें देखने, नेत्रोंके परम लाभको प्रत्यक्ष करने। वे यमुनाजीके तटपर हरसिंगारके वृक्षके नीचे खड़े हैं॥ १॥ सिरपर सुन्दर मोर-चन्द्रिका और मञ्जुल गुञ्जाओंके गुच्छोंको धारण किये हुए हैं। शरीरपर वनकी धातुओंसे बनायी हुई चित्रावली सुशोभित है, पीतपट ओढ़े हैं। मुरलीकी मधुर स्वर-लहरीसे मुग्ध होकर पशु-पक्षी अत्यन्त समीपसे त्रिभङ्गललित मूर्तिको देख रहे हैं॥ २॥ देवता हर्षित होकर आकाशसे फूल बरसा रहे हैं। गोपों और गौओंके समूह प्रेमसे शिथिल हो रहे हैं। (यों कहती-सुनती व्रज-गोपियाँ वहाँ पहुँच गयीं और प्रभुको देखकर मार्गमें जहाँ-की-तहाँ खाली और भरे घड़े लिये (मुग्ध बनी) खड़ी रह गयीं॥ ३॥

राग-सूची

शोभा-वर्णन

राग बिलावल

[२१]

देखु सखी हरि बदन इंदु पर।
चिक्कन कुटिल अलक-अवली-छबि,
कहि न जाइ सोभा अनूप बर॥ १॥
बाल भुअंगिनि निकर मनहुँ मिलि
रहीं घेरि रस जानि सुधाकर।
तजि न सकहिं, नहिं करहिं पान, कहु,
कारन कौन बिचारि डरहिं डर॥ २॥
अरुन बनज लोचन कपोल सुभ,
स्त्रुति मंडित कुंडल अति सुंदर।
मनहुँ सिंधु निज सुतहि मनावन
पठए जुगुल बसीठ बारिचर॥ ३॥
नंदनँदन मुख की सुंदरता
कहि न सकत स्त्रुति सेष उमाबर।
तुलसिदास त्रैलोक्यबिमोहन
रूप कपट नर त्रिबिध सूल हर॥ ४॥

(प्रियतम श्रीकृष्णके मुखचन्द्रको देखकर एक सखी कहती है—) सखी! (प्रियतम) श्यामसुन्दरके मुखचन्द्रपर चिकनी और घुँघराली अलकावलीकी छवि तो देख। उसकी ऐसी अनुपम और श्रेष्ठ शोभा है कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता॥ १॥ ऐसा लगता है कि मानो बाल नागिनियोंके दलने चन्द्रमाको अमृतरूप जानकर घेर लिया है। पर वे न तो उसे छोड़ ही सकती हैं और न पान ही करती हैं। सोचकर बताओ तो इसका क्या कारण है, वे किस डरसे डरी हुई हैं॥ २॥ श्यामसुन्दरके लाल कमलके सदृश नेत्र हैं, मनोहर कपोल हैं, कान अत्यन्त सुन्दर कुण्डलोंसे सुशोभित हैं। ऐसा लगता है मानो समुद्रने अपने पुत्र (चन्द्रमा) को मनानेके लिये (मकराकृति दो कुण्डलोंके रूपमें) दो जलचरों (मगरों) को दूत बनाकर भेजा है॥ ३॥ नन्दनन्दनके श्रीमुखकी

सुन्दरताका वर्णन वेद, शेषजी और पार्वतीपति शंकरजी भी नहीं कर सकते। तुलसीदासजी कहते हैं कि लीलासे मनुष्य बने हुए एवं तीनों लोकोंको विमोहित करनेवाले श्रीकृष्णका यह रूप तीनों (दैहिक, दैविक, भौतिक) तापोंको हर लेता है॥ ४॥

[२२]

आजु उनीदे आए मुरारी।
आलसवंत सुभग लोचन सखि!
छिन मूदत छिन देत उघारी॥ १॥
मनहुँ इंदु पर खंजरीट द्वै
कछुक अरुन बिधि रचे सँवारी।
कुटिल अलक जनु मार फंद कर,
गहे सजग ह्वै रह्यो सँभारी॥ २॥
मनहुँ उड़न चाहत अति चंचल
पलक पंख छिन देत पसारी।
नासिक कीर, बचन पिक, सुनि करि,
संगति मनु गुनि रहत बिचारी॥ ३॥
रुचिर कपोल, चारु कुंडल बर,
भ्रुकुटि सरासन की अनुहारी।
परम चपल तेहि त्रास मनहुँ खग
प्रगटत दुरत न मानत हारी॥ ४॥
जदुपति मुख छबि कलप कोटि लगि
कहि न जाइ जाकें मुख चारी।
तुलसिदास जेहि निरखि ग्वालिनी
भजीं तात पति तनय बिसारी॥ ५॥

(दूसरी सखी बोली—) सखि! आज श्यामसुन्दर यहाँ नींदके बीचसे ही उठकर आ गये हैं, तभी तो वे अपने अलसाते हुए सुन्दर नेत्रोंको क्षण-क्षणमें बंद कर रहे और खोल रहे हैं॥ १॥ (ऐसा लगता है) मानो चन्द्रमण्डलपर ब्रह्माजीने कुछ ललाई लिये हुए दो खंजनोंको सजाकर बना (बैठा) दिया है। (गालोंतक नाचती हुई) घुँघराली अलकें तो मानो

कामदेवके फंदे हैं, जिन्हें सावधानीसे हाथमें लेकर वह सँभाले हुए है (और जिनके द्वारा उन खंजनोंको वह फँसाना चाहता है। इसी डरसे) वे खंजन मानो उड़ना चाहते हैं, अत्यन्त चञ्चल होकर क्षण-क्षणमें पलकरूपी पंखोंको फैला देते हैं, पर नासिकारूपी शुक (को देखकर) तथा वचनरूपी कोयलकी (मधुर) वाणीको सुनकर, उन (सब) का साथ देखकर (अपनेको अकेला न समझकर) (उड़ते नहीं,) रह जाते हैं॥ २-३॥ मनोहर कपोल हैं, (कानोंमें) सुन्दर श्रेष्ठ कुण्डल हैं, धनुषके समान टेढ़ी भौंहें हैं। परम चपल (नेत्ररूपी खंजन) पक्षी मानो उसीके (भौंहरूपी धनुषके) भयसे कभी प्रकट हो जाते हैं, कभी छिप जाते हैं; परंतु हार नहीं मान रहे हैं॥ ४॥ तुलसीदासजी कहते हैं कि यदुपति श्रीकृष्णकी मोहिनी मुख-छविका वर्णन चार मुखवाले ब्रह्माजी भी (करना चाहें तो) करोड़ों कल्पोंमें भी नहीं कर सकते, जिस (छवि) को देखकर गोपियोंने अपने पिता, पति तथा पुत्रोंतकको भुला दिया और (इनके समीप) भाग आयीं॥ ५॥

राग गौरी

[२३]

गोपाल गोकुल बल्लवी प्रिय गोप गोसुत बल्लभं।
चरनारबिंदमहं भजे भजनीय सुर मुनि दुर्लभं॥ १॥
घनश्याम काम अनेक छबि, लोकाभिराम मनोहरं।
किंजल्क बसन, किसोर मूरति भूरि गुन करुनाकरं॥ २॥
सिर केकि पच्छ बिलोल कुंडल, अरुन बनरुह लोचनं।
गुंजावतंस बिचित्र सब अँग धातु, भव भय मोचनं॥ ३॥
कच कुटिल, सुंदर तिलक भ्रू, राका मयंक समाननं।
अपहरन तुलसीदास त्रास बिहार बृंदाकाननं॥ ४॥

(गोपाङ्गनाओंकी इस मिलनलीलाके प्रेमका दिग्दर्शन कराकर अब श्रीतुलसीदासजी विरहलीलाके प्रेमका स्वरूप बतलाना चाहते हैं। श्यामसुन्दर मथुरा पधार गये हैं। एक सखी प्रियतम श्रीकृष्णकी रूपमाधुरीको मानो अपने सामने देखती हुई कहती है कि बस, मैं तो उन सुर-मुनि-दुर्लभ श्रीकृष्ण-चरण-कमलका ही सेवन करूँगी—) श्रीकृष्ण गौओंके रक्षक हैं, हम गोकुलकी ग्वालिनियोंके प्रियतम हैं, गोपों तथा गो-सुतों (बछड़ों)के

प्राणप्रिय हैं, भजन करनेयोग्य तो (एकमात्र) उनके चरणारविन्द ही हैं, यद्यपि वे (भक्तिसे शून्य) देव-मुनियोंके लिये भी दुर्लभ हैं; मैं तो बस, उन चरण-कमलोंका ही भजन करती हूँ। (मेरे सर्वस्व तो वे ही हैं) ॥ १ ॥ (अहा !) उन नव-नीरद-श्यामसुन्दरकी अनेक कामदेवोंके समान शोभा है, वे त्रिभुवन-मोहन हैं, सबके मनोंको हरण करनेवाले हैं, कमलके केसर-सदृश पीत पट धारण किये हुए हैं, किशोरमूर्ति हैं, अनन्त गुणोंसे युक्त हैं, करुणाकी खान हैं॥ २॥ उनके सिरपर मयूरपिच्छ शोभित है, कानोंमें कुण्डल नाच रहे हैं, अरुण कमलके सदृश नेत्र हैं, गुंजाओंकी माला है, समस्त अङ्गोंको धातुओंसे चित्रित कर रखा है, वे संसार-भयसे मुक्त करनेवाले हैं॥ ३ ॥ उनकी घुँघराली टेढ़ी केशराशि है, सुन्दर तिलक है, मनोहर भौंहें हैं, पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान मुख है। तुलसीदासजी कहते हैं, वे वृन्दावनविहारी श्यामसुन्दर ही हमारी त्रास हरण करनेमें समर्थ हैं॥ ४॥

गोपी-विरह

राग बिलावल

[२४]

बिछुरत श्रीब्रजराज आजु
इन नयनन की परतीति गई।
उड़ि न लगे हरि संग सहज तजि,
ह्वै न गए सखि स्याममई॥ १॥
रूप रसिक लालची कहावत,
सो करनी कछु तौ न भई।
साचेहूँ कूर कुटिल सित मेचक,
बृथा मीन छबि छीन लई॥ २॥
अब काहें सोचत मोचत जल,
समय गएँ चित सूल नई।
तुलसिदास जड़ भए आपहि तें,*
जब पलकनि हठि दगा दई॥ ३॥

* पाठभेद—'तब अपहुँसे भए जड़।'

(प्रियतम श्यामसुन्दरके मथुरा चले जानेपर उनके वियोगमें अपने नेत्रोंको दोष देती हुई गोपी कहती है—) सखी ! आज श्रीव्रजराजके बिछुड़ते ही इन नेत्रोंका भी विश्वास जाता रहा (इन्हें या तो श्यामसुन्दरके साथ ही चले जाना चाहिये था या फिर श्यामको ही अंदर लेकर स्वयं श्याममय हो जाना था, पर) ये न तो सारे सम्बन्धोंको तिलाञ्जलि देकर उड़कर उनके साथ ही लग गये और न श्याममय ही हो सके॥ १ ॥ इनको रूपके रसिया तथा सौन्दर्यके लोभी कहा जाता है, पर वैसी करनी तो इनसे कुछ भी नहीं हुई। (ये सब बनावटी बातें हैं।) वास्तवमें ये क्रूर, कुटिल तथा श्यामता लिये हुए सफेद हैं (ऊपरसे साफ दीखते हैं, पर हृदयके बड़े काले हैं—धोखा देना ही इनका काम है)। इन्होंने (मछ्ली-जैसे सुन्दर कहलाकर) मछ्लीकी शोभाको व्यर्थ ही छीन लिया है (क्योंकि मछ्ली तो जलके बिना रहती ही नहीं)। ये श्रीकृष्णके बिना भी बने हुए हैं॥ २ ॥ अब ये (निगोड़े) किसलिये शोक करते और आँसू बहाते हैं, समय निकल जानेके बाद ऐसा करना (रोना-धोना) तो चित्तमें नयी शूल पैदा करनेवाला है। तुलसीदासजी कहते हैं कि तब तो ये अपने-आप ही जड़ हो गये थे, जब पलकोंने हठ करके इन्हें धोखा दिया था। (श्यामसुन्दरके जाते समय उनका जाना देखा नहीं गया। पलकोंने पड़कर गोपियोंकी आँखें बन्द कर दीं, इसी बीचमें श्यामसुन्दरका रथ निकल गया।) ॥ ३ ॥

राग कान्हरा

[२५]

नहिं कछु दोष स्याम को माई।
जो दुख मैं पायों सजनी सुन
सो तौ सबै मन की चतुराई॥ १ ॥
निज हित लागि तबहिं ए बंचक
सब अंगनि बसि प्रीति बढ़ाई।
लियो जो सब सुख हरि अँग-सँग को,
जहँ जेहि बिधि तहँ सोइ बनाई॥ २ ॥

अब नँदलाल गवन सुनि मधुबन,
तनुहि तजत नहिं बार लगाई।
रुचिर रूप-जल महँ रस सो ह्वै[1]
मिलि, न फिरन की बात चलाई॥ ३॥
एहि सरीर बसि सखि वा सठ कहँ,
कहि न जाइ जो निधि फिरि[2] पाई।
तदपि कछू उपकार न कीन्हो,
निज मिलन्यौ तहिं मोहि लिखाई॥ ४॥
आपु मिल्यो यहि भाँति जाति तजि,
तनु मिलयो जल पय की नाई।
ह्वै मराल आयो सुफलक सुत,
लै गयो छीर नीर बिलगाई॥ ५॥
मनहूँ[3] तजी कान्हहूँ[4] त्यागी,
प्रानौ चलिहैं परिमिति पाई।
तुलसिदास रीतेहु तन ऊपर
नयननि की ममता अधिकाई॥ ६॥

(एक सखीने देखा कि उसका मन तो श्यामसुन्दरके साथ जाकर उनके रूपसागरमें नमककी तरह घुल-मिल गया है, परंतु शरीरको इस प्रकार मिलना उसने सिखाया नहीं। शरीर जलमें नमककी भाँति न मिलकर दूधमें पानीकी ज्यों मिला—इसीलिये अक्रूररूपी हंसने आकर दूध-जलको अलग-अलग कर दिया और वह दूधरूप श्रीकृष्णको तो निकाल ले गया तथा जलरूपी शरीर यहीं पड़ गया। गोपी यहाँ प्रकारान्तरसे मनकी महिमा गाती है; क्योंकि मन तो श्यामसुन्दरमें तन्मय हो चुका है, शरीर वियोग-दुःखसे दुःखी है। अतः वह इसके लिये दुःख प्रकट कर रही है। वह कहती है—) अरी माई ! इसमें श्यामसुन्दरका कुछ भी दोष नहीं है। हे सजनी ! सुन—मैंने जो कुछ पाया है वह सब तो मनकी चतुराईका परिणाम है॥ १॥ इस धोखेबाज मनने प्रियतम श्रीकृष्णसे मिलनेके समय तो अपने स्वार्थके लिये सब अङ्गोंमें बसकर

१. पाठभेद—जल मो रसेस ह्वै। २. फबि आई। ३. हौं। ४. हौं।

खूब प्रेम बढ़ाया। जहाँ जिस अङ्गमें जिस प्रकार जैसा बनना चाहिये था, वैसा ही अपनेको बनाकर श्रीश्यामसुन्दरके अङ्ग-सङ्गका सारा सुख प्राप्त किया॥ २॥ पर अब नन्दलालके मधुवन (मथुरा) जानेकी बात सुनकर इसने शरीरको छोड़ (कर चले) जानेमें तनिक भी देर नहीं की। (शरीरको छोड़कर वह श्यामसुन्दरके साथ चला गया और) श्यामसुन्दरके लावण्यमय रूप-सागरमें नमक-सा बनकर घुल-मिल गया। फिर लौटनेकी बात भी नहीं चलायी॥ ३॥ सखी! इस शरीरमें रहकर उस दुष्ट (मन) को जो निधि प्राप्त हुई थी, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता; किंतु उसने जरा भी प्रत्युपकार नहीं किया। शरीरको यह नहीं सिखाया कि जैसे मैं (जलमें नमककी भाँति) मिलता हूँ, वैसे ही तुम भी मिल जाना॥ ४॥ स्वयं तो इस प्रकार अपनी जाति छोड़कर (नमककी भाँति अपने स्थूल रूपको त्यागकर रूपसागरमें) मिल गया। शरीर (बेचारा इस प्रकार मिलना जानता नहीं था इसलिये वह) दूधमें जलकी भाँति मिला और जब अक्रूररूपी हंस आया तब वह (शरीररूपी) जलको अलग करके (श्रीकृष्णरूपी) दूधको ले गया॥ ५॥ यों मुझको मनने त्याग दिया, श्रीकृष्णने भी त्याग दिया और प्राण भी विरहकी पराकाष्ठाका अनुभव करके चल बसेंगे, पर इस (मन और श्रीकृष्णसे रहित) खाली शरीरपर भी नेत्रोंकी बड़ी ममता है (जो बार-बार आँसुओंकी वर्षा करके विरहकी अग्निमें भस्म होनेसे इसको बचाते रहते हैं)॥ ६॥

राग धनाश्री

[२६]

करी है हरि बालक की सी केलि।
हरष न रचत, बिषाद न बिगरत[१], डगरि चले हँसि खेलि॥ १॥
बई[२] बनाय बारि बृंदाबन प्रीति सँजीवनि बेलि।
सींचि सनेह सुधा, खनि काढ़ी लोक बेद परहेलि॥ २॥
तृन ज्यों तजीं, पालि तनु ज्यों हम[३] बिधि बासव बल पेलि।
एतहु पर भावत तुलसी प्रभु गए मोहिनी मेलि॥ ३॥

---

१. बिरचत। २. बोइ। ३. ब्रजजन।

(श्यामसुन्दरके उदासीन-भावका और अपनी उनके प्रति प्रीति-भावनाका दिग्दर्शन कराती हुई एक सखी कहती है—) हरिने (हमारे मनोंको हरण करनेवाले श्रीकृष्णने) यह बालकोंके (घरौंदेके) सदृश खेल किया। उन्हें न प्रीतिरूपी भवन बनानेमें हर्ष हुआ और न उसे उजाड़नेमें विषाद ही हुआ, हँस-खेलकर (उदासीनकी भाँति) अपनी राह चल दिये॥ १॥ वृन्दावनकी बाड़ी (वाटिका) को बनाकर उसमें (उन्होंने अपने हाथों) जिस प्रेमकी संजीवनी लताको बोया (लगाया) तथा स्नेह-सुधासे सींच-सींचकर बढ़ाया, उसीको, लोक-वेद (की मर्यादा) का तिरस्कार करके (लोक-वेदकी मर्यादाके अनुसार अपने लगाये और बढ़ाये हुए पौधेको कोई नहीं काटता) खोदकर निकाल फेंका॥ २॥ ब्रह्मा और इन्द्रके बलको चूर्णकर जिनकी (अपने) शरीरकी भाँति रक्षा की थी, उन्हीं हम गोपियोंको उन्होंने तिनकेकी तरह त्याग दिया। तुलसीदासजीके शब्दोंमें (वह सखी कह रही है कि) वे प्रभु ऐसी मोहिनी डाल गये जिसके कारण इतना होनेपर भी वे हमें अच्छे ही लगते हैं॥ ३॥

[२७]

आलि! अब कहुँ जनि[१] नेह निहारि।
समुझें सहें हमारो है हित बिधि बामता बिचारि॥ १॥
सत्य सनेह सील सोभा सुख सब गुन उदधि अपारि।
देख्यो सुन्यो न कबहुँ काहु कहुँ मीन बियोगी बारि॥ २॥
कहियत काकु कूबरीहूँ को, सो कुबानि बस नारि।
बिष तें बिषम बिनय अनहित की, सुधा सनेही गारि॥ ३॥
मन फेरियत कुतर्क कोटि करि कुबल भरोसे भारि।
तुलसी जग दूजा न देखियत कान्ह कुँवर अनुहारि॥ ४॥

(श्रीकृष्ण-विरह-कातर एक गोपी दूसरी गोपीसे कहती है—) सखी! अब कहीं भी प्रेम मत देखो। विधाता हमारे प्रतिकूल है, इस बातको विचारकर अब समझने (शान्ति धारण करने) और सहनेमें ही हमारी भलाई है॥ १॥ हमारे प्रियतम सत्य, स्नेह, शील, शोभा, सुख आदि सभी गुणोंके समुद्र हैं। (परंतु आजतक) कभी किसीने कहीं यह नहीं

१. कहौ निज।

देखा-सुना कि जल (समुद्र) कभी मछलीका वियोगी बना हो (मछली जैसे जलके वियोगमें तड़प-तड़प कर मर जाती है, वैसे समुद्र भी मछलीके बिछोहमें कभी दु:खी हुआ हो)। (इसी प्रकार श्यामसुन्दर भी समुद्रकी भाँति सर्वगुणनिधि होनेपर भी हमारे वियोगका अनुभव क्यों करने लगे?)॥ २॥ हमलोग कुब्जाको जो भला-बुरा कहती हैं, वह भी अपने स्त्रियोचित बुरे स्वभावके कारण ही। अहितकारी (शत्रु) की विनय भी विषसे कहीं अधिक भयानक होती है और स्नेही (मित्र) की गाली भी अमृतके समान होती है॥ ३॥ (यों) करोड़ों कुतर्क करके अपने दुष्ट (मनो-) बलके भारी भरोसेपर मनको श्यामसुन्दरसे लौटाती हूँ; परंतु तुलसीदासजी कहते हैं कि जगत्‌में उस (मन) को कान्हकुँवरके समान दूसरा कोई दीखता ही नहीं (इससे वह लौटानेपर भी नहीं लौटता)॥ ४॥

[२८]

लागियै रहति नयननि आगे तें
न टरति मोहन मूरति।
नील नलिन स्याम, सोभा अगनित काम,
पावन हृदय जेहिं फूरति॥ १॥
अमित सारदा सेष नहीं कहि
सकत अंग अँग सूरति।
तुलसिदास बड़े भाग मन
लागेहु तें सब सुख पूरति॥ २॥

(सखी श्यामसुन्दरकी रूपमाधुरीका बखान करती हुई कहती है—) मोहनकी असंख्य कामदेवोंकी शोभासे सम्पन्न नीलकमलके सदृश (सुकोमल श्यामकान्ति) मूर्ति जिसके पवित्र हृदयमें (एक बार भी) स्फुरित हो जाती है, फिर वह उसके नेत्रोंमें लगी ही रहती है, सामनेसे कभी हटती ही नहीं॥ १॥ असंख्यों सरस्वती और शेष उनके एक-एक अङ्गकी शोभाका वर्णन भी नहीं कर सकते; (फिर पूरे श्रीविग्रहके सौन्दर्यका बखान तो कोई कर ही क्या सकता है।) तुलसीदासजी कहते हैं कि बड़े सौभाग्यसे यदि प्रभुकी उस (मोहिनी मूर्ति) में किसीका मन लग जाता है तो फिर उतनेसे ही उसके सम्पूर्ण सुखोंकी पूर्ति हो जाती है॥ २॥

[२९]

जब ते ब्रज तजि गये कन्हाई।
तब ते बिरह रबि उदित एकरस सखि! बिछुरन बृष पाई॥ १॥
घटत न तेज, चलत नाहिन रथ, रह्यो उर नभ पर छाई।
इन्द्रिय रूप रासि सोचहि सुठि, सुधि सब की बिसराई॥ २॥
भया सोक भय[1] कोक कोकनद भ्रम भ्रमरनि सुखदाई।
चित चकोर, मन मोर, कुमुद मुद, सकल बिकल अधिकाई॥ ३॥
तनु तड़ाग बल बारि सुखन लाग्यो परि कुरूपता काई।
प्रान मीन दिन दीन दूबरे, दसा दुसह अब आई॥ ४॥
तुलसीदास मनोरथ मन मृग मरत जहँ तहँ धाई।
राम स्याम सावन भादौं बिनु जिय की जरनि न जाई॥ ५॥

सखी! जबसे श्रीकान्हकुँवर व्रजको छोड़कर गये हैं, तभीसे उनके बिछोहरूपी वृष राशिको पाकर (ज्येष्ठका) विरहरूपी (घोर ताप देनेवाला) सूर्य एकरस (अत्यन्त प्रचण्ड होकर) उदित हो रहा है॥ १॥ न तो उस (विरहरूपी प्रचण्ड सूर्य) का तेज ही घटता है, न उसका रथ ही (आगे) चलता है (अर्थात् विरहका घोर ताप स्थिर हो गया है), वह हृदयरूपी आकाशपर छा रहा है। इन्द्रियाँ अन्य सबकी सुधि भुलाकर (श्रीश्यामसुन्दरकी मनोहर) रूपराशिका ही चिन्तन कर रही हैं॥ २॥ (यह विरहसूर्यका प्रचण्ड ताप) जहाँ (एक ओर) शोकरूपी चकवे, भयरूपी कमल तथा भ्रमरूपी भ्रमरोंको सुखदायी हुआ, वहीं (दूसरी ओर) चित्तरूपी चकोर, मनरूपी मयूर और मोदरूपी कुमुद—ये सब अत्यन्त व्याकुल हो गये॥ ३॥ शरीररूपी सरोवरका बलरूपी जल सूखने लगा, उसपर कुरूपताकी काई भी पड़ गयी, प्राणरूपी मछलियाँ दिनोदिन दीन और दुर्बल होने लगीं, उनकी दशा (इस समय) असह्य हो गयी है॥ ४॥ तुलसीदासजी कहते हैं कि मनके मनोरथरूपी हरिन जहाँ-तहाँ दौड़कर (तापसे) मर रहे हैं। श्रीबलराम और श्यामसुन्दररूपी श्रावण भाद्रपदके (आये) बिना हृदयकी यह जलन कभी शान्त नहीं होगी॥ ५॥

१. अति।

[३०]

ससि तें सीतल मोकौं लागै माई री ! तरनि।
याके उएँ बरति अधिक अँग अँग दव,
वाके उएँ मिटति रजनि जनित जरनि॥ १॥
सब बिपरीत भए माधव बिनु,
हित जो करत अनहित की करनि।
तुलसीदास स्यामसुंदर-बिरह की
दुसह दसा सो मो पैं परति नहीं बरनि॥ २॥

माई री ! मुझको चन्द्रमाकी अपेक्षा सूर्य ही शीतल लगता है। इस (चन्द्रमा) के उदय होनेपर तो मेरे अङ्ग-अङ्गमें बड़े जोरसे आग जलने लगती है और उस (सूर्य) के उदय होनेपर रात्रिमें (चन्द्रदर्शनसे) उत्पन्न जलन मिट जाती है॥ १॥ माधवके बिना सभी प्रतिकूल हो गये हैं। जो हितू थे, वे भी शत्रुका-सा आचरण करने लगे। तुलसीदासजीके शब्दोंमें गोपी कहती है कि श्यामसुन्दरके वियोगकी दुःसहनीय दशाका मुझसे वर्णन नहीं हो सकता॥ २॥

[३१]

संतत दुखद सखी ! रजनीकर।
स्वारथ रत तब, अबहुँ एकरस,
मो को कबहूँ न भयो तापहर॥ १॥
निज अंसिक सुख लागि चतुर अति,
कीन्ही प्रथम निसा सुभ सुंदर।
अब बिनु मन तन दहत, दया करि[१]।
राखत रबि ह्वै नयन बारिधर॥ २॥
जद्यपि है दारुन बड़वानल,
राख्यो है जलधि गँभीर धीरतर।
ताहु तें परम कठिन जान्यो ससि,
तज्यो पिता, तब भयो ब्योमचर॥ ३॥

१. तजि।

सकल बिकार कोस बिरहिनि रिपु
काहे तें याहि सराहत सुर नर।
तुलसिदास त्रैलोक्य मान्य भयो,
कारन इहै, गह्यो गिरिजाबर॥ ४॥

(दूसरी सखी बोली—) सखी ! चन्द्रमा तो सदा दु:खदायी ही है। तब (संयोगमें) यह जैसा स्वार्थरत था, अब भी (यह वैसा ही) एकरस है। मेरे लिये तो यह कभी ताप हरनेवाला हुआ ही नहीं॥ १॥ (उस समय) अपने अंश मनके सुखके लिये (इस) परम चतुरने प्रथम (संयोगके समय) रात्रिको शुभ और सुन्दर बनाया; पर अब मनके अभावमें (क्योंकि मन तो श्यामसुन्दरके साथ चला गया) यह शरीरको जला रहा है। दया करके सूर्य ही नेत्ररूपी जलधर बनकर (अश्रुवृष्टि करके शरीरकी जलनेसे) रक्षा करता है॥ २॥ यद्यपि बड़वानल बड़ा दारुण है, फिर भी गम्भीर एवं अत्यन्त धीर समुद्रने उसे (अपने अंदर) रख लिया। इधर चन्द्रमाको उस (बड़वानल) से भी परम कठोर जानकर पिता (समुद्र) ने त्याग दिया, तभीसे (यह) आकाशमें विचरण कर रहा है॥ ३॥ सारी बुराइयोंका भण्डार और विरहिणियोंका शत्रु होनेपर भी जाने क्यों देवता और मनुष्य इसकी बड़ाई किया करते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि (यह चन्द्रमा) जो तीनों लोकोंमें मान्य हो गया, इसका कारण यही है कि गिरिजापति (भगवान् शिव) ने इसे धारण कर लिया (सिर चढ़ा लिया)॥ ४॥

राग मलार

[३२]

कोउ सखि नई बात[१] सुनि आई।
यह ब्रजभूमि सकल सुरपति सों, मदन मिलिक करि पाई॥ १॥
घन धावन, बग पाँति पटो सिर, बैरख तड़ित सोहाई।
बोलत पिक नकीब, गरजनि मिस, मानहुँ फिरत दोहाई॥ २॥
चातक मोर चकोर मधुप सुक सुमन समीर सहाई।
चाहत कियो बास बृंदाबन, बिधि सों कछु न बसाई॥ ३॥

१. चाह।

सींव न चाँपि सक्यो कोऊ तब, जब हुते राम कन्हाई।
अब तुलसी गिरिधर बिनु गोकुल कौन करिहि ठकुराई॥ ४॥

तुलसीदासजी कहते हैं—कोई सखी (यह) नयी बात सुनकर आयी है कि कामदेवने यह सम्पूर्ण व्रजभूमि देवराज इन्द्रसे अपनी मिल्कियत (सम्पत्ति)के रूपमें प्राप्त कर ली है॥ १॥ बादल उस कामदेवके संदेशवाहक दूत हैं, उड़ती हुई बगुलोंकी कतार उसका शिरोवेष्टन है, बिजली सुन्दर सैनिक-झंडा है, कोकिलकी बोली मानो भाटोंका यशोगान है, मेघ-गर्जनके बहाने मानो उसकी दुहाई फिर रही है॥ २॥ चातक, मोर, चकोर, भ्रमर, तोते, पुष्प, पवन—ये सब उसके सहायक हैं। अब वह (कामदेव) वृन्दावनमें ही (डेरा डालकर) रहना चाहता है। विधाताके आगे कुछ भी वश नहीं चलता;॥ ३॥ (नहीं तो) जबतक बलराम-श्याम यहाँ थे, तबतक कोई भी यहाँकी सीमा (मर्यादा) को नहीं दबा सका था। अब गिरधरलालके बिना इस गोकुलका स्वामित्व कौन करेगा ?॥ ४॥

राग सोरठ

[३३]

ऊधो ! या ब्रज की दसा बिचारौ।
ता पाछे यह सिद्धि आपनी जोग कथा बिस्तारौ॥ १॥
जा कारन पठए तुम माधव, सो सोचहु मन माहीं।
केतिक बीच बिरह परमारथ, जानत हौ किधौं नाहीं ?॥ २॥
परम चतुर निज दास स्याम के, संतत निकट रहत हौ।
जल बूड़त अवलंब फेन कौ फिरि-फिरि कहा कहत हौ ?॥ ३॥
वह अति ललित मनोहर आनन कौने जतन बिसारौं।
जोग जुगुति अरु मुकुति बिबिध बिधि वा मुरली पर वारौं॥ ४॥
जेहिं उर बसत स्यामसुंदर घन, तेहिं निर्गुन कस आवै।
तुलसिदास सो भजन बहावौ, जाहि दूसरो भावै॥ ५॥

गोपियाँ कहती हैं—उद्धवजी ! (पहले) इस व्रजकी दशापर तो विचार करो, फिर अपनी इस योगकथारूप सिद्धिका विस्तार (बखान) करना॥ १॥ तुमको माधवने जिस कारणसे हमलोगोंके पास भेजा है, उसका मनमें विचार करो। (श्रीकृष्णकी दी हुई) विरहव्यथामें और तुम्हारे

परमार्थ (कैवल्य मोक्ष) में कितना अन्तर है, यह जानते हो या नहीं ?॥ २॥ तुम तो परम चतुर हो, श्यामसुन्दरके निजी सेवक हो और सदा उनके पास ही रहते हो; (फिर भी) जलमें डूबते हुएको फेनका सहारा लेनेके लिये बार-बार क्या उपदेश दे रहे हो ? (हम विरहसागरमें डूबी हुई हैं, हमें परमार्थरूपी फेनके सहारे बचाना चाहते हो—धन्य है तुम्हारी चतुरताको !) ॥ ३ ॥ (बताओ तो भला,) हम उस अत्यन्त ललित मनोहर मुखकमलको कैसे भूल जायँ ? तुम्हारी योगकी सारी युक्तियोंको तथा (सालोक्य आदि) विविध प्रकारकी मुक्तियोंको हम उस मोहनकी मुरलीपर निछावर करती हैं॥ ४॥ जिस हृदयमें श्यामसुन्दर ठसाठस भरे हैं, वहाँ तुम्हारे निर्गुणका प्रवेश कैसे हो सकता है ? तुलसीदासजीके शब्दोंमें गोपियाँ कहती हैं—उस भजनको निकाल बाहर करो, जिसमें श्यामसुन्दरके सिवा कोई दूसरा प्रिय लगता हो॥ ५॥

[३४]

मधुकर! कहहु कहन जो पारौ।
बलि, नाहिन अपराध रावरो, सकुचि साध जनि मारौ॥ १॥
नहिं तुम ब्रज बसि नन्दलाल को बालबिनोद निहारौ।
नाहिन रास रसिक रस चाख्यो, तात डेल सो डारौ॥ २॥
तुलसी जौ न गए प्रीतम सँग प्रान त्यागि तनु न्यारौ।
तौ सुनिबो देखिबो बहुत अब कहा करम सों चारौ॥ ३॥

गोपियाँ कहती हैं—भ्रमर ! जो कुछ कह सकते हो, कह डालो; हम तुमपर बलिहारी जाती हैं, तुम्हारा कोई अपराध नहीं है। संकोचमें पड़कर अपने मनकी इच्छाको मत मारो॥ १॥ तुमने न तो व्रजमें बसकर नन्दनन्दनका बालविनोद ही देखा है, न तुमने उन रसिक-शेखरके रास-रसका ही आस्वादन किया है; इसीसे ढेले-से फेंक रहे हो (प्रेमियोंके सामने परमार्थकी नीरस चर्चा कर रहे हो)॥ २॥ तुलसीदासजी कहते हैं कि जब शरीरको अलग हटाकर प्रियतम श्यामसुन्दरके साथ ये प्राण नहीं चले गये, तब अभी बहुत कुछ सुनना-देखना पड़ेगा। भाग्यके आगे क्या उपाय है ?॥ ३॥

[३५]

ऊधो जू कह्यो तिहारोइ कीबो।
नीकें जिय की जानि अपनपौ समुझि सिखावन दीबो॥ १॥
स्याम बियोगी ब्रज के लोगनि जोग जोग जो जानौ।
तौ सँकोच परिहरि पा लागौं परमारथहि बखानौ॥ २॥
गोपी गाय ग्वाल गोसुत सब रहत रूप अनुरागे।
दीन मलीन छीन तनु डोलत मीन मजा सों लागे॥ ३॥
तुलसी है सनेह दुखदायक[1], नहिं जानत ऐसो को है।
तऊ न होत कान्ह को सो मन, सबै साहिबहि सोहै॥ ४॥

गोपियोंने कहा—अच्छा, उद्धवजी ! हम तुम्हारा ही कहा करेंगी। हमारे हृदयकी बात अच्छी तरह जानकर और अपने स्वरूपको समझकर (फिर उचित) शिक्षा दो॥ १॥ यदि श्यामसुन्दरके वियोगी—उनके विरहानलसे जलते हुए—व्रजवासियोंको योगसाधनाके योग्य समझते हो तो हम तुम्हारे पैरों पड़ती हैं, तुम संकोच छोड़कर (हृदय खोलकर) परमार्थकी व्याख्या करो॥ २॥ जरा सोचो तो—ये गोपी, गोप, गायें, बछड़े—सभी (सदा) (श्रीकृष्णके सुन्दर) रूपमें ही अनुरक्त रहते हैं। आज (उनके वियोगसे) दीन, म्लान और शरीरसे क्षीण हुए वैसे ही (छटपटाते हुए) भटक रहे हैं, जैसे माजा (रोग) से पीड़ित मछलियाँ॥ ३॥ तुलसीदासजी कहते हैं—यह सभी जानते हैं कि प्रेम दुःख ही देता है, फिर भी हमारा मन कन्हैयाजीके मन-सरीखा (निष्ठुर) नहीं होता (कि उनकी तरह स्नेहका बन्धन तोड़कर हम भी सुखी हो जायँ)। (यदि कोई पूछे कि कृष्ण ऐसा क्यों करते हैं ? तो इसका उत्तर यह है कि) स्वामीको सभी बातें फबती हैं (वे कुछ भी करें, सब उचित ही है)॥ ४॥

राग बिलावल

[३६]

सो कहौ मधुप! जो मोहन कहि पठई।
तुम सकुचत कत? हौंही नीकें जानति,
नंदनंदन हो निपट करी सठई॥ १॥

---

१. सुखदायक।

हुतो न साँचो सनेह, मिट्यो मन को सँदेह
हरि परे उघरि, सँदेसहु ठठई।
तुलसिदास कौन आस मिलन की,
कहि गये सो तौ कछु एकौ न चित ठई॥ २॥

भ्रमर (उद्धवजी) ! तुम वही बात कहो, जो मन-मोहनने कहला भेजा है। तुम संकोच क्यों करते हो ? हम अच्छी तरह जानती हैं कि नन्दनन्दनने अत्यन्त शठता की है॥ १॥ उनके मनमें सच्चा प्रेम था ही नहीं, हमारे मनका संदेह मिट गया है। हमारे मनोंको हरण करनेवाले श्यामसुन्दर अब खुल पड़े हैं—(उनका कपट चौड़े आ गया है)। उनका यह संदेश भी उपहास (-जैसा ही) है। तुलसीदासजी कहते हैं कि अब उनके मिलनेकी क्या आशा की जाय ? जितनी बातें कह गये थे, उनमेंसे कोई एक भी उन्होंने चित्तमें स्थिर नहीं रखी (सच्ची करके नहीं दिखायी)॥ २॥

[३७]

मेरे जान और कछु न मन गुनिए।
कूबरी रवन कान्ह कही जो मधुप सों,
सोई सिख सजनी! सुचित दै सुनिए॥ १॥
काहे को करति रोष, देहि धौं कौन को दोष,
निज नयननिको बयो सब लुनिए।
दारु सरीर, कीट पहिले सुख,
सुमिरि सुमिरि बासर निसि धुनिए॥ २॥
ये सनेह सुचि अधिक अधिक रुचि,
बरज्यो न करत कितो सिर धुनिए।
तुलसिदास अब नंदसुवन हित
बिषम बियोग अनल तनु हुनिए॥ ३॥

तुलसीदासजीके शब्दोंमें एक सखी दूसरी सखीसे कहती है—अरी सजनी ! मेरी समझसे अब मनमें और कुछ विचार नहीं करना चाहिये। कुब्जारमण श्रीकृष्णने जो कुछ भ्रमरसे कहा है, उसी उपदेशको पूरा ध्यान देकर सुना जाय॥ १॥ क्यों (किसीपर) क्रोध करती हो, किसको दोष

दोगी ? अपने नेत्रोंका बोया हुआ ही काटना पड़ रहा है (नेत्रोंने जो श्यामके रूप-सौन्दर्यपर मुग्ध होकर प्रेमका बीज बोया था, उसीका फल यह वियोग-दुःख है)। शरीररूपी काठमें पहले भोगे हुए सुखरूपी कीड़े छेद कर रहे हैं, अब बार-बार उन्हींकी याद करके हमलोग दिन-रात सिर धुनती रहें॥ २॥ तुलसीदासजी कहते हैं कि (इतनेपर) भी इन (नेत्रों) की पवित्र प्रेममें रुचि अधिकाधिक बढ़ती ही जा रही है, चाहे जितना सिर धुनो और बरजो, पर ये (नेत्र) तो मानते नहीं (उन्हींको देखनेके लिये आकुल रहते हैं), अतः अब तो नन्दनन्दनके लिये उनके विषम वियोगकी अग्निमें शरीरको होम देना है॥ ३॥

[३८]

भली कही, आली, हमहुँ पहिचाने।
हरि निर्गुन, निर्लेप, निरपने,
निपट निठुर, निज काज सयाने॥ १॥
ब्रज को बिरह, अरु संग महर को,
कुबरिहि बरत न नेकु लजाने।
समुझि सो प्रीति की रीति स्याम की,
सोइ बावरि जो परेखो उर आने॥ २॥
सुनत न सिख लालची बिलोचन,
एतेहु पर रुचि रूप लोभाने।
तुलसिदास इहै अधिक कान्ह पहिं,
नीकेई लागत मन रहत समाने॥ ३॥

तुलसीदासजीके शब्दोंमें दूसरी सखी कहती है—सखी ! तुमने ठीक ही कहा है, हम भी उन्हें पहचान गयी हैं। (सचमुच) वे सब कुछ हरण करनेवाले, निर्गुण और निर्लेप ही हैं। वे किसीके अपने नहीं हैं, निपट निर्दयी हैं। हाँ, अपना प्रयोजन सिद्ध करनेमें बड़े निपुण हैं॥ १॥ (तभी तो) व्रजवासियोंके विरह और नन्दरानीकी प्रीतिकी परवा न करके कुब्जाको वरण करनेमें उन्हें तनिक भी लज्जा नहीं आयी। श्यामसुन्दरकी इस प्रीतिकी रीति (कपट-प्रेम) को जानकर भी जो हृदयमें पछताये, वह पगली है॥ २॥ तुलसीदासजी कहते हैं कि इतनेपर भी मनोहर सौन्दर्यपर

लुभाये हुए लालची नेत्र कोई भी सीख नहीं सुनते (उन्हींको खोजते रहते हैं) कन्हैयामें यह विशेषता है। वे (सदा) अच्छे ही लगते हैं, (इसीसे) मनमें समाये रहते हैं॥ ३॥

राग मलार

[३९]

जो पै अलि! अंत इहै करिबो हो।
तौ[1] अगनित अहीर अबलनि को हठि न हियो हरिबो हो॥ १॥
जौ प्रपंच करि[2] नाम प्रेम फिरि अनुचित आचरिबो हो।
तौ मथुराहि महामहिमा लहि सकल ढरनि ढरिबो हो॥ २॥
दै कूबरिहि रूप ब्रज सुधि भएँ लौकिक डर डरिबो हो।
ग्यान बिराग काल कृत करतब हमरेहि सिर धरिबो हो॥ ३॥
उन्हहि राग रबि नीरद जल ज्यों प्रभु परिमिति परिबो हो।
हमहुँ निठुर निरुपाधि नीर निधि[3] निज भुजबल तरिबो हो॥ ४॥
भलो भयो सब भाँति हमारो, एक बार मरिबो हो।
तुलसी कान्ह बिरह नित नव जरजरि जीवन भरिबो हो॥ ५॥

(एक गोपीने कहा—) अरे भ्रमर ! यदि उन्हें अन्तमें यही करना था (हमें रोती-बिलखती छोड़कर चले ही जाना था) तो बलपूर्वक असंख्य गोप-अबलाओंका हृदय-हरण नहीं करना चाहिये था॥ १॥ यदि प्रेमके नामपर छल-कपट करके फिर अनुचित आचरण (कुब्जासे प्रेम) करना था तो (पहलेसे ही) मथुरामें महान् महत्त्व (स्वामित्व) प्राप्त करके (वहींके निवासियोंपर) सारी करुणावृत्तिको लेकर रीझना चाहिये था (यहाँ हम गँवारिनोंसे सम्बन्ध नहीं जोड़ना चाहिये था)॥ २॥ (पर उन्हें तो) कुब्जाको सुन्दर रूप देकर व्रजकी याद आनेपर घरके लौकिक डरसे डरना था। (हमलोगोंके साथ प्रेम करनेसे उनकी बदनामी होगी, ऐसा मानकर हमसे सम्बन्ध तोड़ना था और) ज्ञान-वैराग्यकी शिक्षा तथा (संयोग-वियोग आदि) सब कुछ काल एवं पूर्वकृत् कर्मोंसे होता है, यह उपदेश हमारे ही सिर लादना था (ज्ञान, वैराग्य तथा प्रारब्धका उपदेश देकर हमसे सम्बन्ध तोड़ना था, इसीसे तुमको यहाँ भेजा है)॥ ३॥ उन

१. अतुलित। २. परि नाम। ३. नीरनिधि।

कब ब्रज तज्यो, ग्यान कब उपज्यो? कब बिदेहता लही है?।
गए बिसारि रीति गोकुल की, अब निर्गुन गति गही है॥ २॥
आयसु देहु, करहिं सोइ सिर धरि, प्रीति परमिति निरबही है।
तुलसी परमेस्वर न सहैगो, हम अबलनि सब सही है॥ ३॥

भ्रमर! तुमने श्रीकृष्णकी ही कही हुई बातें क्यों नहीं कहीं ? ये सब बातें तो उस चञ्चल दासी (कुब्जा) की हैं, जो अत्यन्त कठोर हैं॥ १॥ (भला, कन्हैयाने) कब (कितने दिन हुए) व्रज छोड़ा ? उन्हें (इतने ही थोड़े समयमें) कब ज्ञान हो गया और कब उन्होंने विदेहता प्राप्त कर ली? (अभी कलतक तो हमारे साथ प्रेम-लीला की है,) जो (अकस्मात्) गोकुलकी (प्रीतिकी) रीतिको भूल गये और अब निर्गुणकी चाल पकड़ ली ?॥ २॥ (अस्तु,) तुम आज्ञा दो, हम सिर चढ़ाकर उसीका पालन करें। हमने तो (सदा ही) प्रेमकी मर्यादाका पालन किया है (उसके सुखमें ही सुख माना है)। तुलसीदासजीके शब्दोंमें गोपियाँ कहती हैं कि हम अबलाओंने सब कुछ सहा है, परंतु परमेश्वर इसे नहीं सहेगा॥ ३॥

[४३]

दीन्ही है मधुप सबहि सिख नीकी।
सोइ आदरौ, आस जाके जियँ बारि बिलोवत घी की॥ १॥
बुझी बात कान्ह कुबरी की, मधुकर कछु जनि पूछौ।
ठालीं ग्वालि जानि पठए अलि, कह्यो है पछोरन छूछौ॥ २॥
हमहूँ कछुक लखी ही तब की[१] औरेब[२] नंदलला की।
ये अब लही चतुर चेरी पै चोखी चाल चलाकी॥ ३॥
गए कर तें, घर तें, आँगन तें, ब्रजहू तें ब्रजनाथ।
तुलसी प्रभु गयो चहत मनहु तें, सो तो है हमारे हाथ॥ ४॥

तुलसीदासजीके शब्दोंमें एक सखी बोली—(अरी सखियो!) भ्रमरने सबको अच्छी सीख दी है। जिसके मनमें जलको मथनेसे घी प्राप्त करनेकी आशा हो, वही इस (सारहीन) सीखका आदर करे॥ १॥ हमने कन्हैया और कुब्जाकी (सारी) बात समझ ली। (अब) मधुकरसे कुछ भी मत पूछो। हम गोपियोंको (बिलकुल) निठल्ली (बेकाम) समझकर

---

१. ही। २. औरे।

[४५]

आली! अति अनुचित, उतरु न दीजै।
सेवक सखा सनेही हरि के, जो कछु कहैं सो कीजै॥ १॥
देस काल उपदेस सँदेसो सादर सब सुनि लीजै।
कै समुझिबो, कै ये समुझैहैं, हारेहुँ मानि सहीजै॥ २॥
सखि सरोष प्रिय दोष बिचारत प्रेम पीन पन छीजै।
खग मृग मीन सलभ सरसिज गति सुनि पाहनौ पसीजै॥ ३॥
ऊधो परम हितू हित सिखवत परमिति पहुँचि पतीजै।
तुलसिदास अपराध आपनो, नंदलाल बिनु जीजै॥ ४॥

(एक दूसरी गोपीने कहा—) सखी ! (उद्धवजीको) उत्तर नहीं देना चाहिये (इतनी कड़ी बात नहीं कहनी चाहिये), यह अत्यन्त अनुचित है। ये हमारा सर्वस्व हरण करनेवाले प्रियतमके सेवक, सखा और प्रेमी हैं, (इस नाते) ये जो कुछ कहें, वही करना चाहिये॥ १॥ ये देश-कालके अनुसार जो भी उपदेश अथवा संदेश दें, सबको आदरसहित सुनना चाहिये। (ऐसा करनेपर या तो) हम (स्वयं) समझ जायँगी अथवा ये हमें समझा देंगे। इनके (तर्कमें) हार जानेपर भी इन्हींकी बात मानकर सहन करना चाहिये॥ २॥ सखी ! क्रोधमें भरकर प्रियतमके दोषोंका विचार करनेसे प्रेमकी पुष्ट प्रतिज्ञा टूट जाती है। पक्षी (चातक), मृग, मछली, पतंग और कमलकी गति (एकाङ्गी प्रेमकी स्थितिको—वे प्रिय-विरहमें कैसे प्राण त्याग देते हैं अथवा मुरझा जाते हैं, इसे) सुनकर पत्थर भी पिघल जाता है॥ ३॥ उद्धवजी (हमारे) परम हितैषी हैं, ये (हमें) हितकी बात ही कहते हैं। इनकी शिक्षाकी सीमातक पहुँचकर (इसके फलको विचारकर) विश्वास करना चाहिये। तुलसीदासजी कहते हैं—अपराध तो (वास्तवमें) हमारा ही है, जो हम (प्रियतम) नन्दनन्दनके बिना जी रही हैं (उपर्युक्त आदर्श प्रेमियोंकी भाँति प्राण नहीं त्याग देतीं) !॥ ४॥

[४६]

ऊधो हैं बड़े, कहैं सोइ कीजै।
अलि, पहिचानि प्रेमकी परिमिति उतरु फेरि नहिं दीजै॥ १॥

जननी जनक जरठ जाने, जन परिजन लोगु न छीजै।
दै पठयो पहिलो बिढ़तो ब्रज, सादर सिर धरि लीजै॥ २॥
कंस मारि जदुबंस सुखी कियो, स्त्रवन सुजस सुनि जीजै।
तुलसी त्यों-त्यों होइगी गरुई, ज्यों-ज्यों कामरि भीजै॥ ३॥

(दूसरी गोपी व्यङ्गकी भाषामें बोली—) उद्धवजी बड़े हैं; (अतः) वे जो कहें, वही करना चाहिये। सखी ! प्रेमकी मर्यादाको समझकर फिर इनको प्रत्युत्तर नहीं देना चाहिये (इनकी बात बिना ननु-नच किये मान लेनी चाहिये)॥ १॥ माता-पिताको बूढ़े जानकर तथा बन्धु-बान्धवलोग विरहमें क्षीण न हों, यह विचारकर श्यामसुन्दरने अपनी पहली कमाईका यह धन व्रजमें भेजा है, इसे आदरपूर्वक सिर चढ़ाकर स्वीकार करना चाहिये॥ २॥ उन्होंने कंसको मारकर यदुकुलको सुखी कर दिया, (उनका) यह सुन्दर यश कानोंसे सुनकर (इसी आनन्दमें) जीवनको रखना चाहिये। तुलसीदासजी कहते हैं—कम्बल जितनी भीगी, उतनी ही भारी होती चली जायगी (उनके प्रेमकी सरस स्मृतिमें जितना ही मनको डुबाओगी, उतना ही वह भारी (दुःखी) हो जायगा)॥ ३॥

[४७]

कान्ह, अलि, भए नए गुरु ग्यानी।
तुम्हरे कहत आपने समुझत बात सही उर आनी॥ १॥
लिए अपनाइ लाइ चंदन तन, कछु कटु चाह[१] उड़ानी।
जरी सुँघाइ कूबरी कौतुक करि जोगी बघा-जुड़ानी॥ २॥
ब्रज बसि रास बिलास, मधुपुरी चेरी सों रति मानी।
जोग जोग ग्वालिनी बियोगिनि जान सिरोमनि जानी॥ ३॥
कहिबे कछू, कछू कहि जैहै, रहौ आलि ! अरगानी।
तुलसी हाथ पराएँ प्रीतम, तुम्ह प्रिय हाथ बिकानी॥ ४॥

(दूसरी सखी बोली—) भ्रमर ! कन्हैया (कुब्जाके शिष्य बनकर अभी) नये ही ज्ञानी गुरु हुए हैं। तुम्हारे कथनसे और अपनी समझसे हमने अपने हृदयमें समझ लिया कि यह बात सत्य है॥ १॥ कुब्जाने उनके शरीरमें चन्दन लगाकर उन्हें अपना लिया (अपने वशमें कर लिया)।

१. कछुक कुचाह।

(इसपर) ऐसी कुछ अप्रिय खबर उड़ी (फैली) है कि जैसे बाघ-जुड़ानी (बाघको बेहोश करके वशमें करनेवाली) जड़ी सुँघाकर बाघको सहज ही बाँध लिया जाता है, वैसे ही कुब्जाने चन्दनरूपी जड़ी सुँघाकर खेल-ही-खेलमें (इन किसीके वशमें न आनेवाले) योगीराजको वशमें कर लिया है॥ २॥ व्रजमें बसकर उन्होंने (हम ग्वालिनोंके साथ) रास-विलास किया और (अब) मथुरामें (जाकर) दासीसे प्रेम जोड़ लिया। (वे स्वयं ही इस स्थितिमें हैं पर) उन समझदारोंके शिरोमणिने हम वियोग-पीड़िता गोपियोंको योग-साधनके योग्य समझा है॥ ३॥ तुलसीदासजी कहते हैं—सखी! (तुम्हें) कहना कुछ और होगा किंतु (आवेशमें) कहा जायगा कुछ और ही, अतः चुप रहो। (क्या किया जाय,) प्रियतम (श्यामसुन्दर) तो पराये वशमें हैं और तुम प्रियतमके हाथ बिक चुकी हो॥ ४॥

[४८]

सब मिलि साहस करिय सयानी।
ब्रज आनियहिं मनाइ पायँ परि कान्ह कूबरी रानी॥ १॥
बसैं सुबास, सुपास होहिं सब फिरि गोकुल रजधानीं।
महरि महर जीवहिं सुख जीवन खुलहिं मोद मनि खानीं॥ २॥
तजि अभिमान अनख अपनो हित कीजिय मुनिबर बानी।
देखिबो दरस दूसरेहुँ चौथेहुँ बड़ो लाभ, लघु हानी॥ ३॥
पावक परत निषिद्ध लाकरी होति अनल जग जानी।
तुलसी सो तिहुँ भुवन गायबी नंदसुवन सनमानी॥ ४॥

(एक गोपीने कहा—) सयानी सखियो! (हम) सबको मिलकर साहस करना चाहिये। कन्हैयाको और कुब्जारानीको पैर पड़कर मनाकर (मथुरासे) व्रजमें ले आया जाय॥ १॥ इससे गोकुलकी राजधानीमें सब लोग सुखपूर्वक निवास करेंगे तथा फिर यहाँ सब प्रकारकी सुविधाएँ हो जायँगी। माता यशोदा और नन्द बाबा भी सुखी होकर जीवन बितायेंगे। (यहाँ व्रजमें) आनन्दरूपी मणिकी खान खुल जायगी॥ २॥ (अतः) अभिमान और ईर्ष्या छोड़कर अपना हित करना चाहिये। ऐसा (वाल्मीकि-व्यास आदि) मुनियोंका श्रेष्ठ उपदेश है। (प्राणप्रियतम यहाँ पधारकर कुब्जाके साथ रहेंगे, तो भी) दूसरे-चौथे (दिन) तो उनके दर्शन हो ही

जायँगे। यह महान् लाभ है (तथा अभिमान-त्यागरूपी) हानि बहुत छोटी है। (कुब्जा पहले दासी अथवा कुरूप थी तो क्या हुआ। भगवान्‌का सङ्ग पाकर तो वह भगवत्-स्वरूप ही हो गयी।)॥ ३॥ (बबूर, बहेड़ा आदिकी) निषिद्ध लकड़ी भी अग्निमें पड़नेपर अग्निरूप ही हो जाती है, यह बात जगत्प्रसिद्ध है। तुलसीदासजी कहते हैं कि नन्दनन्दनने जिसे अपनी प्रेयसी होनेका सम्मान प्रदान किया है, उस (कुब्जा)का तो (अब) तीनों लोकोंमें गुणगान होगा॥ ४॥

[४९]

कही है भली बात सब के मन मानी।
प्रिय सम[१] प्रिय सनेह भाजन सखि प्रीति-रीति जग जानी॥ १॥
भूषन भूति गरल परिहरि कै[२] हर मूरति उर आनी।
मज्जन पान कियो कै सुरसरि कर्मनास जल छानी॥ २॥
पूँछ सो प्रेम, बिरोध सींग सों एहिं बिचार हित हानी।
कीजै कान्ह कूबरी सों नित नेह करम मन बानी॥ ३॥
तुलसी तजिय कुचालि आलि! अब, सुधरै सबइ नसानी।
आगें करि मधुकर मथुरा कहँ सोधिय सुदिन सयानी॥ ४॥

(दूसरी गोपी बोली—) सखीने यह बहुत अच्छी बात कही है। यह सभीके मनको प्रिय लगी है। प्रेमकी यह रीति जगत्प्रसिद्ध है कि प्रेमास्पदका प्रेमपात्र भी प्रेमास्पदके समान ही प्रिय होता है॥ १॥ आभूषण (सर्प), भस्म (चिताकी राख) और विष (गलेके हलाहल विष) को त्यागकर किसने अपने हृदयमें भगवान् शंकरकी मूर्तिका ध्यान किया है? (गङ्गाजीमें मिली हुई) कर्मनाशाके जलको छानकर (अलग करके) किसने गङ्गाजलमें स्नान अथवा (उसका) पान किया है?॥ २॥ पूँछसे प्रेम और सींगसे विरोध—इस प्रकारके विचारसे अपने ही हितकी हानि होती है (कुब्जा सींगके समान टेढ़ी है और हमारे प्रियतम पूँछकी तरह सीधे एवं उसके अनुगामी हैं) (अतएव) कन्हैया और कुब्जा (दोनों) से हमें सदा-सर्वदा मन, वचन और कर्मसे (छल छोड़कर सच्चा) प्रेम करना चाहिये॥ ३॥ तुलसीदासजी कहते हैं—अरी सखी! अब (हमें

१. सन। २. केहि।

कुब्जाके प्रति ईर्ष्यारूप) सारी कुचाल छोड़ देनी चाहिये, इससे सारी बिगड़ी बात सुधर जायगी। अब (हमें) इस भ्रमरको (उद्धवजीको) आगे करके शुभ दिन देखकर (श्रीकृष्ण और कुब्जाको मनाकर लानेके लिये) मथुराको चल देना चाहिये॥ ४॥

राग कान्हरा

[५०]

हे हम समाचार सब पाए।
अब बिसेष देखे तुम देखे,
हैं कूबरी हाँक से लाए[१]॥ १॥
मथुरा बड़ो नगर नागर जन,
जिन्ह जातहिं जदुनाथ पढ़ाए।
समुझि रहनि, सुनि कहनि बिरह ब्रन,
अनख अमिय ओषध सरुहाए॥ २॥
मधुकर रसिक सिरोमनि कहियत,
कौने यह रस रीति सिखाए।
बिनु आखर को गीत गाइ कै[२]
चाहत ग्वालिन ग्वाल रिझाए॥ ३॥
फल पहिले हीं लह्यो ब्रजबासिन्ह,
अब साधन उपदेसन आए।
तुलसी अलि अजहुँ नहीं बूझत,
कौन हेतु नँदलाल पठाए॥ ४॥

(उद्धवजी !) सारे समाचार हम (पहले ही) पा चुकी थीं, अब आपको देखकर विशेषरूपसे (सब) प्रत्यक्ष कर लिया, जो आप कुब्जाकी ओरसे ललकार-सरीखा सँदेसा लेकर आये हैं॥ १॥ मथुरा बड़ा नगर है, वहाँके लोग (बड़े ही) चतुर हैं, जिन्होंने जाते ही यदुनाथको पढ़ा-सिखा (कर पक्का कर) दिया। उनकी रहनी भी समझ ली गयी और उनका कथन (भी आपसे) सुन लिया। (तभी तो व्रजके) विरहरूपी घावको ईर्ष्यारूपी अमृतमय औषधसे अच्छा करनेके लिये आप यहाँ

---

१. आये। २. गाइ।

पधारे हैं॥ २॥ भ्रमरको लोग रसिक-शिरोमणि कहते हैं; पर आपको यह रसकी रीति किसने सिखलायी है, जो आप बिना अक्षरका (निर्गुण) गीत गाकर (गुँजार करके) गोपियोंको और गोपोंको रिझाना चाहते हैं॥ ३॥ तुलसीदासजी कहते हैं—(अरे भोले उद्धवजी !) व्रजवासियोंने तो (श्रीकृष्णरूपी परम और चरम महान्) फल पहले ही प्राप्त कर लिया था, अब इन्हें (आप) उसके साधनका उपदेश देने आये हैं। (गोपी कहती है—सखी !) इन भ्रमर-उद्धवके अब भी समझमें नहीं आ रहा है कि नन्दनन्दनने इन्हें यहाँ किस उद्देश्यसे भेजा है (हमें उपदेश देने भेजा है या प्रेममयी गोप-सुन्दरियोंसे प्रेमकी शिक्षा प्राप्त करने)॥ ४॥

[५१]

कौन सुनै अलि की चतुराई।
अपनिहिं मतिबिलास अकास महँ चाहत सियनि चलाई॥ १॥
सरल सुलभ हरिभगति सुखाकर[1] निगम पुराननि गाई।
तजि सोइ सुधा मनोरथ करि करि को मरिहै री, माई॥ २॥
जद्यपि ताको सोइ मारग प्रिय जाहि जहाँ बनि आई।
मैन के दसन कुलिस के मोदक कहत सुनत बौराई॥ ३॥
सगुन छीरनिधि तीर बसत ब्रज तिहुँ पुर बिदित बड़ाई।
आक दुहन तुम कह्यो, सो परिहरि हम यह मति नहिं पाई॥ ४॥
जानत हैं जदुनाथ सबनि की बुधि बिबेक जड़ताई।
तुलसिदास जनि बकहि मधुप सठ ! हठ निसि दिन अँवराई॥ ५॥

(इस) भ्रमर (उद्धव) की चतुरता (भरी बातों) को (भला) कौन सुने, जो अपनी बुद्धिके विलाससे ही आकाशको सीना चाहता है?॥ १॥ भगवान्की भक्ति सुखकी खान है, यह (अत्यन्त) सरल और सुलभ है। इसकी महिमा वेद-पुराणोंमें गायी गयी है। उस भक्तिरूपी सुधारसको छोड़कर अरी माई ! (शुष्क निर्गुण ज्ञानकी प्राप्तिके लिये) मनोरथ कर-करके (भला) कौन मरेगा?॥ २॥ (यह सत्य है कि) उसके लिये वही मार्ग प्रिय होता है, जिसकी जहाँ अनुकूलता होती है, फिर भी (कोमल)

१. सुधाकर।

मोमके दाँतोंसे वज्र (हीरे) के लड्डू चबानेकी बात तो कहना-सुनना ही पागलपन है। (हम कोमल प्रेमरसपूरित हृदयवाली गोपियोंसे कठोर ब्रह्मका साधन करवाना पागलपन ही है।) ॥ ३ ॥ व्रजकी यह महिमा तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है कि यह सगुण श्यामसुन्दररूप क्षीरसागरके तटपर बसा है। (व्रजको यह सगुण सुमधुर दूध नित्य प्राप्त है।) अब उस (क्षीरसिन्धु) को छोड़कर विषपूर्ण आक दुहने (निर्गुण विचार करने) की बात तुमने कही है। सो हमने तो ऐसी बुद्धि नहीं प्राप्त की है (कि तुम्हारी इस बातको सुनें) ॥ ४ ॥ यदुपति श्रीकृष्ण सबकी बुद्धि, ज्ञान और अज्ञानको भी (भलीभाँति) जानते हैं। तुलसीदासजीके शब्दोंमें गोपी कहती है कि अरे दुष्ट भ्रमर ! अब (व्यर्थकी) बकबक मत करो। जिन्होंने (तुमको भी) आग्रहपूर्वक रात-दिन (रसमय) आमके बगीचेमें रहने (अपने सामीप्यका सुअवसर) दिया है, उनकी ओरसे फिर तुम हमें यह नीरस उपदेश क्यों दे रहे हो ॥ ५ ॥

राग केदारा

[५२]

गोकुल प्रीति नित[१] नई जानि।
जाइ अनत सुनाइ[२] मधुकर ग्यान गिरा पुरानि ॥ १ ॥
मिलहिं जोगी जरठ तिन्हहि देखाउ निरगुन खानि।
नवल नंदकुमार के ब्रज सगुन सुजस बखानि ॥ २ ॥
तू जो हम आदर्‌यो, सो तो ब्रज कमल की[३] कानि।
तजहि तुलसी समुझि यह उपदेसिबे की बानि ॥ ३ ॥

भ्रमर ! गोकुलमें तो नित्य नवीन प्रेम (की छटा छायी रहती) है, यह समझकर (किसी) दूसरी जगह जाकर अपनी यह ज्ञानकी पुरानी गाथा सुनाओ ॥ १ ॥ तुम्हें बूढ़े योगी मिलें; उन्हींको यह निर्गुणकी खान दिखलाना। (यहाँ) व्रजमें तो सगुणरूप नित्य नवीन व्रजराजकुमारके सुन्दर यशका ही वर्णन करो ॥ २ ॥ हमने तुम्हारा जो आदर किया है, सो तो (केवल) व्रजके (प्रफुल्लित) कमल (श्रीकृष्णचन्द्र) की कान

१. नीति। २. सुनाउ। ३. नवकमल।

मानकर ही (यह समझकर कि तुम उनके सखा हो, उन्होंने तुमको भेजा है, अतः तुम्हारा सम्मान करना चाहिये, न कि तुम्हारा ज्ञान सुननेके लिये तुम्हें ज्ञानी मानकर) किया है। अतः तुलसीदासजी कहते हैं कि इस बातको समझकर अपनी यह ज्ञानका उपदेश करनेकी बान छोड़ दो॥ ३॥

[५३]

काहे को कहत बचन सँवारि।
ग्यानगाहक नाहिनै ब्रज, मधुप! अनत सिधारि॥ १॥
जुगुति धूम बघारिबे की समुझिहैं न गँवारि।
जोगिजन मुनिमंडली मों जाइ रीती ढारि॥ २॥
सुनै तिन्ह की कौन तुलसी, जिन्हहि जीति न हारि।
सकति[1] खारो कियो चाहत मेघहू को बारि॥ ३॥

भ्रमर ! क्यों सँवार-सँवारकर (इतनी) बातें कहते हो ? (यहाँ) व्रजमें (तुम्हारे) ज्ञानका (कोई) ग्राहक है ही नहीं। (ज्ञानका उपदेश करना हो तो किसी) दूसरी जगह पधारो!॥ १॥ हम (गाँवकी) गँवारियाँ (केवल) धुएँका छौंक देनेकी (निर्गुणकी चर्चा करनेकी) युक्तियोंको नहीं समझेंगी। योगिजनों और मुनियोंकी मण्डलीमें (जाकर अपनी) इस खाली गगरीको उँडेलो॥ २॥ तुलसीदासजी कहते हैं—भला, उनकी कौन सुने, जिनके लिये जीत-हार है ही नहीं (जो केवल समताकी ही झड़ी लगाये रहते हैं) और जो अपनी (वाक्) शक्तिसे बादलके जलकी (हमारे सरस हृदयकी सारी सुधा-धाराको) भी खारा कर देना चाहते हैं॥ ३॥

[५४]

ऐसो हौंहुँ जानति भृंग!
नाहिनै काहूँ लह्यो सुख प्रीति करि इक अंग॥ १॥
कौन भीर जो नीरदहि, जेहि लागि रटत बिहंग।
मीन जल बिनु तलफि तनु तजै, सलिल सहज असंग॥ २॥
पीर कछू न मनिहि, जाकें बिरह बिकल भुअंग।
ब्याध बिसिख बिलोक नहिं कलगान लुबुध कुरंग॥ ३॥

---

१. सकल।

स्यामघन गुनबारि छबिमनि मुरलि तान तरंग।
लग्यो मन बहु भाँति तुलसी होइ क्यों रसभंग?॥ ४॥

(एक प्रेम-विह्वलहृदया सखी बोली—) भ्रमर! मैं भी ऐसा जानती हूँ कि एकाङ्गी प्रेम करके किसीने भी सुख नहीं पाया है॥ १॥ जिसके लिये चातक (दिन-रात आर्त होकर अनन्य भावसे) रट लगाता रहता है, उस मेघको भला, कौन-सी चिन्ता होती है। मछली जलके बिना तड़प-तड़पकर शरीर छोड़ देती है, पर जल स्वभावसे ही प्रीतिरहित रहता है (उसको मछलीकी पीड़ाका कोई विचार नहीं होता)॥ २॥ जिस (मणि) के वियोगमें सर्प (अत्यन्त) व्याकुल हो जाता है, उस मणिको (सर्पकी पीड़ासे) कुछ भी पीड़ा नहीं होती। सुन्दर संगीतपर मुग्ध हरिणको बधिकका बाण नहीं देखता (उसे तुरंत मार ही डालता है)। (यह एकाङ्गी प्रेमियोंकी गति है। वे एक-एक गुणपर मुग्ध होकर प्रेमवश प्राणत्याग कर देते हैं)॥ ३॥ हमारे श्यामसुन्दर मेघ हैं, उनका (अतुलनीय प्रेमाकर्षणरूप) गुण जल है, उनकी रूपमाधुरी मणि है तथा मुरलीकी (मनोहर) तान तरङ्ग (सुन्दर संगीत) है। (अतएव चातक, मछली, सर्प, हरिन आदिकी तरह) बहुत प्रकारसे हमारा मन उनमें लग गया है। तुलसीदासजी कहते हैं कि (अब) इस रसका भङ्ग (श्रीकृष्णके प्रेमका त्याग) कैसे हो सकता है?॥ ४॥

[५५]

ऊधो! प्रीति करि निरमोहियन सों को न भयो दुख दीन?।
सुनत समुझत कहत हम सब भईं अति अप्रबीन[1]॥ १॥
अहि कुरंग पतंग[2] कंज चकोर चातक मीन।
बैठि इन की पाँति अब सुख चहत मन मतिहीन॥ २॥
निठुरता अरु नेह की गति कठिन परति कही न।
दास तुलसी सोच नित निज प्रेम जानि मलीन॥ ३॥

उद्धवजी! निर्मोहियों (श्रीकृष्ण-जैसे ममता-मोहरहित प्रेमास्पदों) से प्रेम करके कौन (ऐसा है जो) दुःखसे कातर नहीं हुआ? (श्रीकृष्णके

१. अतिहि प्रवीन। २. पंकज चारु चातक मीन।

निर्मोहीपनकी बातोंको बार-बार) सुनने, समझने और (परस्पर) कहनेसे हम सब बड़ी मूढ़ हो गयी हैं॥ १॥ हमारा मूढ़ मन तो अब सर्प, हरिन, पतंग, कमल, चकोर, चातक और मछली (—जैसे एकाङ्गी प्रेमियों) की पङ्क्तिमें बैठकर (उन्हींके समान) सुख प्राप्त करना चाहता है॥ २॥ तुलसीदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कहती है कि—(प्रेमास्पदकी) निष्ठुरता और (प्रेमीके) प्रेमकी गति (उसका रहस्य) बड़ा ही दुर्गम है, उसका वर्णन तो हो ही नहीं सकता। हमें तो सदा अपने प्रेमको मलिन जानकर चिन्ता रहती है। (उपर्युक्त प्रेमी प्राणियोंकी भाँति वह विशुद्ध एकाङ्गी नहीं है, इसीसे तो हमारे प्राण नहीं निकल रहे हैं।)॥ ३॥

राग गौरी

[५६]

सुनत कुलिस सम बचन तिहारे।
चित दै मधुप ! सुनहु सोइ कारन,
जाते जात न प्रान हमारे॥ १॥
ग्यान कृपान समान लगत उर,
बिहरत छिन-छिन होत निनारे।
अवधि जरा जोरति हठि पुनि-पुनि,
याते रहत सहत दुख भारे॥ २॥
पावक बिरह, समीर स्वास,
तनु तूल, मिले तुम जारनिहारे।
तिन्हहि निदरि अपने हित कारन,
राखत नयन निपुन रखवारे॥ ३॥
जीवन कठिन, मरन की यह गति,
दुसह बिपति ब्रजनाथ निवारे।
तुलसिदास यह दसा जानि जियँ,
उचित होइ सो कहौ अलि! प्यारे॥ ४॥

(श्रीकृष्णकी परम प्रेमिका एक सखी बोली—) भ्रमर ! तुम्हारे वज्रके समान (हृदयविदीर्णकारी) वचनोंको सुननेपर भी हमारे प्राण किस कारण नहीं निकल रहे हैं, उसे तुम चित्त लगाकर (ध्यान देकर)

सुनो॥ १॥ (तुम्हारा) ज्ञान (का यह उपदेश) तलवार (की करारी चोट) के समान हृदयमें लगता है, जिससे वह विदीर्ण होकर क्षण-क्षणमें टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। पर (श्यामसुन्दर कह गये थे कि मैं इतने दिनोंमें लौट आऊँगा; यह समयकी) अवधिरूपी जरा (राक्षसी) पुनः-पुनः उस विदीर्ण हुए हृदयको जोड़ देती है, इसीसे ये प्राण (शरीरमें) रहकर बड़ा भारी दुःख सहते रहते हैं॥ २॥ (प्रियतम श्यामसुन्दरका) वियोग अग्नि है, (लम्बे) श्वास पवन हैं, (हमारे) शरीर रूई हैं और तुम जलानेवाले मिल गये। (इतनेपर भी ये शरीर जल नहीं रहे हैं, इसका कारण यह है कि) इन सबका निरादर करके निपुण पहरेदार नेत्र अपने हितके लिये (बार-बार आँसुओंकी प्रबल जलधारा बहाकर इस शरीरकी) रक्षा कर रहे हैं॥ ३॥ (श्रीकृष्णके वियोगमें हमारा) जीवित रहना कठिन है और मरणकी यह स्थिति है। (अब तो) श्रीव्रजराज ही (स्वयं पधारकर) इस दुःसह दुःखका निवारण करें। तुलसीदासजी कहते हैं कि प्यारे भ्रमर ! हमारी (इस दयनीय) दशाको (भलीभाँति) समझकर जो उचित हो, वही कहो॥ ४॥

[५७]

छपद! सुनहु बर बचन हमारे।
बिनु ब्रजनाथ ताप नयननि को
कौन हरे, हरि अंतर कारे॥ १॥
कनक कुंभ भरि-भरि पियूष जल
बरषत जलद[१] कलप सत हारे।
कदलि, सीप, चातक को कारज
स्वाति बारि बिनु कोउ न सँवारे॥ २॥
सब अँग रुचिर किसोर स्यामघन
जेहिं हृदि जलज बसत हरि प्यारे।
तेहिं उर क्यों समात बिराट बपु
स्यों महि सरित सिंधु गिरि भारे॥ ३॥
बढ्यो प्रेम अति प्रलय के बर[२] ज्यों
बिपुल जोग जल बोरि न पारे।

१. सक्र। २. बट

तुलसिदास ब्रज बनितनि को ब्रत
समरथ को करि जतन निवारे॥ ४॥

भ्रमर! हमारे श्रेष्ठ वचन सुनो। श्रीव्रजराजके बिना हमारे नेत्रोंकी जलनको (भला,) कौन शान्त कर सकता है, पर वे सर्वस्व हरण करनेवाले श्यामसुन्दर हृदयके काले (कपटी) हैं। (फिर हमारे नेत्रोंकी यह तपन कैसे बुझे?)॥ १॥ बादल चाहे सैकड़ों कल्पोंतक सोनेके कलशोंमें अमृतजल भर-भरकर बरसाते हुए थक जायँ; पर केले, सीप और चातकका काम स्वाती नक्षत्रके जलके बिना कोई भी नहीं बना सकता। (जैसे स्वातीके जल बिना केलेमें कपूर, सीपमें मोती नहीं बनता और चातककी प्यास नहीं बुझती, वैसे ही श्रीकृष्णके बिना हम गोपियोंका भी मनोरथ सिद्ध नहीं हो सकता।)॥ २॥ जिस (कोमल) हृदय-सरोजमें सर्वाङ्गसुन्दर (नित्य नव) किशोर घनश्याम प्यारे हरि निवास करते हैं, भला, उस हृदयमें पृथ्वी, नदी, समुद्र और पर्वत आदिसे युक्त (भगवान्का) विराट्रूप कैसे समा सकता है?॥ ३॥ तुलसीदासजी कहते हैं—(गोपियोंका) प्रेम प्रलयकालीन अक्षयवटकी भाँति बहुत अधिक बढ़ गया है। उसे महान् योगरूपी जल नहीं डुबा सकता। कौन ऐसा समर्थ है, जो व्रजसुन्दरियोंके इस (अटल प्रेम—) व्रतको उपाय करके हटा सके?॥ ४॥

[५८]

मधुप! समुझि देखहु मन माहीं।
प्रेम पियूषरूप उड़ुपति बिनु
कैसे हो अलि ! पैयत रबि पाहीं॥ १॥
जद्यपि तुम हित लागि कहत सुनि
स्त्रवन बचन नहिं हृदयँ समाहीं।
मिलहिं न पावक महँ तुषार कन
जौ खोजत सत कल्प सिराहीं॥ २॥
तुम कहि रहे, हमहुँ पचि हारीं,
लोचन हठी तजत हठ नाहीं।
तुलसिदास सोइ जतन करहु कछु
बारेक स्याम इहाँ फिरि जाहीं॥ ३॥

हे भ्रमर! (तुम स्वयं) मनमें विचारकर देखो। अमृतरूपी प्रेम (श्रीकृष्णरूप) चन्द्रमाको छोड़कर, अरे भ्रमर! (प्रचण्डप्रकाशरूप ज्ञान—) सूर्यसे किस प्रकार मिल सकता है?॥ १ ॥ यद्यपि तुम (हमारे) हितके लिये ही कह रहे हो और हम भी कानोंसे (तुम्हारे ये) वचन सुन रही हैं, फिर भी (हमारे) हृदयमें (तुम्हारी ये बातें) प्रवेश ही नहीं करतीं। खोजते-खोजते चाहे सौ कल्प बीत जायँ, पर (ज्ञानरूप) अग्निमें बर्फके कण (हृदयको शीतल-शान्त-सुखी कर देनेवाले प्रेमके कण) नहीं मिल सकते॥ २ ॥ तुम कह रहे हो और हम भी प्रयत्न करके हार गयी हैं, किंतु हमारे हठीले नेत्र अपना हठ छोड़ते ही नहीं। तुलसीदासजी कहते हैं—(उद्धवजी !) अब तो कुछ ऐसा प्रयत्न करो जिससे श्यामसुन्दर एक बार यहाँ आकर (फिर चाहे भले ही लौट जायँ)॥ ३ ॥

[५९]

मोको अब नयन भए रिपु माई!
हरि-बियोग तनु तजेहिं परम सुख,
ए राखहिं सो करि बरिआई॥ १ ॥
बरु मन कियो बहुत हित मेरो,
बारहिं बार काम दव लाई।
बरषि नीर ये तबहिं बुझावहिं
स्वारथ निपुन अधिक चतुराई॥ २ ॥
ग्यान परसु दै मधुप पठायो
बिरह बेलि कैसेहुँ कटि[1] जाई।
सो थाक्यो बरु[2] रह्यो एकटक
देखत इन की सहज सिंचाई॥ ३ ॥
हारतहूँ न हारि मानत सठ
सखि! सुभाव कंदुक की नाई।
चातक जलज मीनहु ते भोरे,
समुझत नहिं उन की निठुराई॥ ४ ॥

१. कठिनाई। २. बरह्यों एकहि तक।

ये हठ निरत दरस लालच बस,
परे जहाँ बल बुधि न बसाई।
तुलसिदास इन्ह पै जो द्रवहिं हरि
तौ पुनि मिलहिं बैरु बिसराई॥ ५॥

(अन्तमें राधारानी बोलीं—) सखी ! मेरे लिये तो अब ये नेत्र ही शत्रु हो गये हैं। (जिन्होंने प्रेमके परमाकर्षणसे हृदयको हर लिया, उन) श्रीहरिके वियोगमें शरीरका त्याग कर देनेमें ही परम सुख है, पर (ये नेत्र) बलात् उसकी रक्षा कर रहे हैं॥ १॥ बल्कि बार-बार (प्रियतमके मिलनकी) कामनारूपी अग्नि जलाकर (और इस प्रकार शरीरको भस्म करनेका आयोजन करके) मनने (तो) मेरा बहुत हित किया; परंतु ये स्वार्थ-साधनमें निपुण नेत्र अत्यन्त चतुरतासे उसी क्षण (अश्रु) जलकी (घनघोर) वर्षा करके (उस अग्निको) बुझा देते हैं (शरीरको जलने नहीं देते)॥ २॥ (श्रीकृष्णने) ज्ञानकी कुल्हाड़ी देकर भ्रमर (उद्धव) को भेजा कि किसी भी प्रकार यह विरहकी बेल कट जाय, पर वह (भ्रमर) थक गया और (आश्चर्यचकित होकर) एकटक (दृष्टिसे) इन नेत्रोंके द्वारा की जानेवाली स्वाभाविक सिंचाईको देखता रह गया॥ ३॥ हारनेपर भी (इनके द्वारा किया गया आगके बुझानेका प्रयत्न निष्फल होनेपर भी) हे सखि ! ये दुष्ट हार नहीं मानते। इनका स्वभाव भी गेंदके समान है (जो बार-बार ठोकर खाकर भी उछला करता है)। अरी ! ये तो चातक, कमल और मछलीसे भी अधिक भोले हैं, जो उनकी निष्ठुरताको नहीं समझते॥ ४॥ ये दर्शनके लोभवश हठ पकड़े हुए हैं, किंतु उनका पाला ऐसे निष्ठुरसे पड़ा है; जिसके सामने बल-बुद्धिकी कुछ भी नहीं चलती। तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि श्रीहरि इनपर (अपनी ओरसे ही) द्रवित हों तो विरोध भुलाकर पुनः आकर मिल लें (इन्हें दर्शन दे दें)॥ ५॥

भक्त-मर्यादा-रक्षण

राग आसावरी

[६०]

कहा भयो कपट जुआ जौ हौं हारी।
समर धीर महाबीर पाँच पति
क्यों दैहैं मोहि होन उघारी॥ १॥

राज समाज सभासद समरथ
भीषम द्रोन धर्म धुर धारी।
अबला अनघ अनवसर अनुचित
होति, हेरि करिहैं रखवारी॥ २॥
यों मन गुनति दुसासन दुरजन
तमक्यो तकि गहि दुहुँ कर सारी।
सकुचि गात गोवति कमठी ज्यों
हहरी हृदयँ, बिकल भइ भारी॥ ३॥
अपनेनि को अपनो बिलोकि बल
सकल आस बिस्वास बिसारी।
हाथ उठाइ अनाथनाथ सों
'पाहि पाहि प्रभु! पाहि' पुकारी॥ ४॥
तुलसी परखि प्रतीति प्रीति गति
आरतपाल कृपालु मुरारी।
बसन बेष राखी बिसेषि लखि
बिरुदावलि मूरति नर नारी॥ ५॥

(व्रजलीलाके कुछ अति मधुर प्रसङ्गोंका ललित पदोंमें वर्णन करके अब गोसाईंजी महाराज अगले दो पदोंमें द्रौपदी-लज्जा-रक्षणलीला गाकर श्रीकृष्णगीतावली समाप्त करते हैं—) (दुर्योधनके दुष्ट दरबारमें द्रौपदी मन-ही-मन सोचती है—) 'क्या हुआ जो मैं कपटसे खेले जानेवाले जुएमें हारी गयी। युद्धमें धैर्यशाली महान् शूरवीर मेरे पाँचों पति मुझे क्योंकर नंगी होने देंगे॥ १॥ (कदाचित् हारे हुए वे न भी बोलें तो) इस राजसभामें धर्मकी धुरीको धारण करनेवाले समर्थ सभासद् भीष्मपितामह, आचार्य द्रोण आदि हैं, वे मुझ निष्पाप अबलाके साथ असमयमें अनुचित व्यवहार (अत्याचार) होते देखकर (अवश्य ही मेरी) रक्षा करेंगे'—॥ २॥ यों द्रौपदी (अपने) मनमें सोच ही रही थी कि दुष्ट दु:शासनने उसकी ओर क्रोध भरी दृष्टिसे देखकर दोनों हाथोंसे उसकी साड़ीको पकड़ लिया। द्रौपदी सकुचाकर (अपने) शरीरको कछुईकी भाँति छिपाती हुई काँप उठी और हृदयमें अत्यन्त व्याकुल हो गयी॥ ३॥ अपना और

अपने (सहायक)स्वजनों (पाँचों पाण्डवों तथा भीष्म, द्रोणादि) का बल देखकर (उनको बलहीन जानकर) वह सबके आशा-विश्वासको भूल गयी तथा (दोनों) हाथ उठाकर अनाथनाथ (श्रीकृष्ण) को पुकार उठी—'रक्षा करो, रक्षा करो, प्रभो! (इस असहाय अबलाकी) रक्षा करो'॥ ४॥ तुलसीदासजी कहते हैं कि आर्तकी रक्षा करनेवाले कृपामय मुरारि (श्रीकृष्ण) ने द्रौपदीके विश्वास, प्रेम तथा परायणताको देखकर(तुरंत) वस्त्रका वेष धारण कर लिया और नरावतार अर्जुनकी प्रिया (द्रौपदी) की, उसे अपनी विरदावली (दीनबन्धुता तथा करुणामयता) की (साक्षात्) मूर्ति (परम अधिकारिणी) जानकर, विशेषरूपसे रक्षा की॥ ५॥

[६१]

गहगह गगन दुंदुभी बाजी।
बरषि सुमन सुरगन गावत जस,
हरष मगन मुनि सुजन समाजी॥ १॥
सानुज सगन ससचिव सुजोधन
भए मुख मलिन खाइ खल खाजी[1]।
लाज गाज उपवनि कुचाल कलि
परी बजाइ कहूँ कहुँ गाजी॥ २॥
प्रीति प्रतीति द्रुपदतनया की
भली भूरि भय भभरि न भाजी।
कहि पारथ सारथिहि सराहत
गई बहोरि गरीब नेवाजी॥ ३॥
सिथिल सनेह मुदित मनहीं मन
बसन बीच बिच बधू बिराजी।
सभा सिंधु जदुपति जय जय जनु
रमा प्रगटि त्रिभुवन भरि भ्राजी॥ ४॥
जुग जुग जग साके केसव के
समन कलेस कुसाज सुसाजी।

१. बाजी।

तुलसी को न होइ सुनि कीरति
कृष्न कृपालु भगति पथ राजी॥ ५॥

आकाशमें घमाघम नगारे बजने लगे। देवतागण पुष्पोंकी वर्षा करके (भगवान्‌का) यश गाने लगे। मुनि तथा संतजनोंका समाज हर्षमें मग्न हो गया॥ १॥ अपने मुँहकी खाकर (बुरी तरह हारकर) भाइयों, साथियों और मन्त्रियोंके साथ दुष्ट दुर्योधनका मुख मलिन हो गया। (साक्षात्) कलियुग (की मूर्ति दुर्योधन) की कुचाल (कुचक्र) रूप मेघघटाकी लज्जाहरणरूप बिजली प्रत्यक्षरूपमें गिरी तो कहीं (पाण्डवोंपर), परंतु उसने गर्जनके साथ आघात किया कहीं अन्यत्र (दुर्योधनके पक्षवालोंपर)। (अर्थात् उसकी चली हुई कुचाल उसीके लिये घातक सिद्ध हुई।)॥ २॥ द्रौपदीका (श्रीकृष्णरूप परमात्माके प्रति) प्रेम और विश्वास इतना आदर्श सिद्ध हुआ कि भारी संकटके समक्ष भी वह घबराकर भागा नहीं (बना रहा) सब लोग पार्थ सारथि (भगवान् श्रीकृष्ण) की दीनबन्धुता—(द्रौपदीकी) गयी हुई (लाज) को पुनः लौटा लानेके विरदको बखान-बखानकर उसकी सराहना कर रहे थे॥ ३॥ द्रौपदी प्रेमसे (सम्पूर्णतया) शिथिल और मन-ही-मन प्रमुदित होती हुई वस्त्रोंके (ढेरके) बीचमें विशेष शोभायमान थी। राजसभारूपी समुद्रमें यदुनाथकी जय-जय-ध्वनिरूपी लक्ष्मीजी प्रकट होकर त्रिभुवनमें व्याप्त एवं सुशोभित हो रही थीं। (तीनों लोक भगवान्‌की जय-ध्वनिसे भर गये थे)॥ ४॥ तुलसीदासजी कहते हैं कि केशवकी यह कीर्ति प्रत्येक युगमें क्लेशका नाश करनेवाली तथा अमङ्गल-सामग्रीको मङ्गलमय सामग्री बना देनेवाली है। कृपामय श्रीकृष्णकी कीर्ति सुनकर ऐसा कौन है जो उनके भक्तिके पथपर प्रसन्नतासे नहीं चलेगा?॥ ५॥

श्रीकृष्णार्पणमस्तु

ही उन्होंने (इस) भ्रमरको धानकी भूसी फटकनेके लिये कहला भेजा है (निस्सार ज्ञानका उपदेश कहलाया है)॥ २॥ हमने (जब वे व्रजमें थे,) उन दिनों (भी) नन्दनन्दनकी तिरछी चालें देख ली थीं; पर अब तो चतुर दासीसे उन्होंने चोखी चालाकीकी चाल सीख ली है॥ ३॥ वे व्रजनाथ (हमारे) हाथोंसे, घरसे, आँगनसे और व्रजसे तो (निकलकर) चले ही गये। अब वे (हमारे मनको इस छूछे ज्ञानके गड़हेमें डालकर) मनसे भी चले जाना चाहते हैं, पर (वे ऐसा कभी नहीं कर सकते, क्योंकि) यह तो हमारे हाथमें है (हम उन्हें अपने मनसे कभी नहीं जाने देंगी)॥ ४॥

[४४]

ताकी सिख ब्रज न सुनैगो कोउ भोरें।
जाकी कहनि रहनि अनमिल अलि ! सुनत समुझियत थोरें॥ १॥
आपु, कंज मकरंद सुधा ह्रद हृदय रहत नित बोरें।
हम सों कहत बिरह स्त्रम जैहै गगन कूप खनि खोरें॥ २॥
धान को गाँव पयार तें जानिय ग्यान बिषय मन मोरें।
तुलसी अधिक कहें न रहै रस, गूलरि को सो फल फोरें॥ ३॥

(एक गोपी खिन्न मनसे बोली—) उसकी सीख अब व्रजमें कोई भूलकर भी नहीं सुनेगा। जिसकी कथनी (कथन) और रहनी (आचरण) में मेल नहीं है (कहना कुछ है और करना कुछ और ही है), भ्रमर ! उसकी बात (की निस्सारता) सुनते ही थोड़ेमें ही समझ ली जाती है॥ १॥ वह स्वयं तो सदा-सर्वदा कमल-मकरन्दके सुधा-सरोवरमें अपने हृदयको डुबाये रखता है, पर हमसे कहता है कि आकाशमें कुआँ खोदकर (उसके मिथ्या) जलसे स्नान करनेसे (निर्गुण ब्रह्मके ध्यानसे) विरहजनित कष्ट दूर हो जायगा॥ २॥ जिस गाँवमें धान होता है, उसका पता पुआल (धानके सूखे डंठल) देखनेसे ही लग जाता है। इसी प्रकार अमुक व्यक्तिमें ज्ञान कितना है, इसका पता इसी बातसे लगता है कि उसका मन विषयोंसे कितना मुड़ा (हटा) हुआ है। (भ्रमरके ज्ञानकी थाह उसकी रसलोलुपतासे ही लग जाती है।) तुलसीदासजी कहते हैं, अधिक कहनेसे रस नहीं रह जायगा, जैसे गूलरके फलको फोड़नेसे रस नहीं निकलता (कीड़े ही दिखायी देते हैं)॥ ३॥

[४१]

मधुकर! कान्ह कही ते न होही।
कै ये नई सीख सिखई हरि निज अनुराग बिछोही॥ १॥
राखी सचि कूबरी पीठ पर ये बातें बकुचौहीं।
स्याम सो गाहक पाइ सयानी ! खोलि देखाई है गौहीं॥ २॥
नागर मनि सोभा सागर जेहिं जग जुबतीं हँसि मोहीं।
लियो रूप दै ग्यान गाँठरी भलो ठग्यो ठगु ओहीं॥ ३॥
है निर्गुन सारी बारिक, बलि घरी करौं, हम जोही।
तुलसी ये नागरिन्ह जोग पट, जिन्हहि आजु सब सोही॥ ४॥

अरे भ्रमर! तुम्हारी ये बातें श्रीकृष्णचन्द्रकी कही हुई नहीं हैं। या (सम्भव है) हमारा सर्वस्व हरण करनेवाले श्यामसुन्दरने अपनी प्रेमविरहिणी गोपियोंको ये (कुब्जासे) नयी सीखी हुई बातें उपदेशके रूपमें कहला भेजी हैं। इसीसे अबतक जो हमसे प्रत्यक्ष प्रेम करते थे, अब वे यह निर्गुण-निर्लेप शिक्षा देने लगे॥ १॥ (जान पड़ता है) कुब्जाने (कूबरके रूपमें) अपनी पीठपर इन्हीं बातोंको संग्रह करके बगुचेके रूपमें रखा था। अब उस सयानीने श्यामसुन्दर-सरीखा ग्राहक पाकर उसे तुरंत खोलकर दिखा दिया॥ २॥ श्यामसुन्दर नागर-शिरोमणि एवं शोभाके समुद्र हैं। जिन्होंने अपनी (मन्द) मुसकानसे जगत्की (समस्त) तरुणियोंको मोह लिया, (उन्हीं) (सबके हृदयको लूट लेनेवाले) ठगको आज कुब्जाने ठग लिया और अपनी ज्ञानकी गँठरी देकर उनसे सुन्दर स्वरूप (अथवा उनका प्रेम) ले लिया॥ ३॥ उसकी यह निर्गुणकी साड़ी बड़ी ही सूक्ष्म है, इसको हमने देख लिया है; इसे (तुम) तह लगाकर रख दो, हम तुम्हारी बलिहारी जाती हैं। तुलसीदासजी कहते हैं— यह वस्त्र तो नगरकी रहनेवाली रमणियोंके ही योग्य है, जिन्हें सब कुछ भी शोभा दे रहा है (क्योंकि सौन्दर्यसागर श्रीकृष्ण उनके वशमें हैं)॥ ४॥

[४२]

मधुप! तुम्ह कान्ह ही की कही क्यों न कही है?।
यह बतकही चपल चेरी की निपट चरेरीयै रही है॥ १॥

(श्रीकृष्ण) का तो हमारे प्रति उतना ही राग है, जितना सूर्यका बादलके जलसे होता है। (सूर्य जलको आकर्षित करके मेघरूपमें परिणत कर देता है और फिर उससे कोई सम्बन्ध नहीं रखता।) उन्हें तो (अब) राजाकी मर्यादाका पालन करना है। (इधर) हमलोगोंको तो कठोर उपाधिरहित (निर्गुणरूप) जल-सागरको अपनी भुजाओंके बलसे पार करना है॥ ४॥ तुलसीदासजी कहते हैं—हमारा तो सब प्रकारसे भला ही हुआ, एक बार तो हमें मरना था ही। अब तो, श्रीकृष्ण-विरहके नित्य-नये संतापसे जल-जलकर जीवन बिताना होगा॥ ५॥

[४०]

ऊधो! यह ह्याँ न कछू कहिबे ही।
ग्यान गिरा कुबरीरवन की सुनि बिचारि गहिबे ही॥ १॥
पाइ रजाइ, नाइ सिर, गृह ह्वै गति परमिति लहिबे ही।
मति मटुकी मृगजल भरि घृत हित मन-हीं-मन महिबे ही॥ २॥
गाडे भली, उखारे अनुचित, बनि आएँ बहिबे ही।
तुलसी प्रभुहिं तुमहिं हमहूँ हियँ सासति सी सहिबे ही॥ ३॥

उद्धवजी ! हमें यहाँ कुछ नहीं कहना है। कुब्जारमणकी ये ज्ञानकी बातें सुनकर एवं विचार करके उन्हें ग्रहण (धारण) करना है॥ १॥ उनकी आज्ञा पाकर, उसे सिर चढ़ाकर घरमें रहकर ही परमगति (ब्रह्म) को प्राप्त करना है। (अब तो हमें) बुद्धिरूपी मटकीमें (ब्रह्मज्ञानरूप) मृगतृष्णाका जल भरकर घृत (आनन्द) के लिये उसको मन-ही-मन मथना है (उसमें कहीं आनन्द तो है नहीं—केवल मनकी कल्पना है)॥ २॥ (श्रीकृष्णके प्रेमकी पुरानी गाथाको) दबाये रखनेमें ही भलाई है, उसे उखाड़ना (प्रकट करना) उचित नहीं (उससे तो रोग तथा दुःख ही बढ़ेगा)। (अब तो) आ पड़नेपर उसे निबाहना ही होगा। तुलसीदासजी कहते हैं—अब तो तुम्हारे स्वामी (श्रीकृष्ण) को, तुमको और हम सब (गोपियों) को हृदयमें एक प्रकारसे वेदना ही सहनी है (कुब्जासे प्रीति करके तुम्हारे स्वामी अथवा उनके सेवक तुम भी सुखी रह सकोगे, ऐसी बात नहीं है और हम तो वियोग-दुःखमें जलती ही हैं)॥ ३॥